तुलसीदास रचित रामचरितमानस में निहित समन्वयवाद

त्रिभुवन विश्वविद्यालय

मानविकी तथा सामाजिक शास्त्र संकाय

हिंदी केन्द्रीय विभाग

कीर्तिपुर, काठमान्डौ

के लिए

एम.ए. हिंदी के चतुर्थ सत्र के

पंचम पत्र (विषय कोड ५७०) के

रूप में प्रस्तुत

शोधपत्र

शोधार्थी

अंशु कुमारी झा

हिन्दी केन्द्रीय विभाग

त्रिभुवन विश्वविद्यालय कीर्तिपुर

काठमान्डौ, नेपाल

२०७५

त्रिभुवन विश्वविद्यालय

मानविकी तथा सामाजिक शास्त्र संकाय

हिंदी केन्द्रीय विभाग

कीर्तिपुर, काठमान्डौ

प्रमाणित किया जाता है कि **"तुलसीदास रचित रामचरितमानस में निहित समन्वयवाद"** शोधपत्र मेरे निर्देशन में हिन्दी विभाग की **छात्रा अंशु कुमारी झा** ने तैयार किया है । एम.ए. हिंदी के चतुर्थ सत्र के पंचम पत्र (विषय कोड ५७०) के रूप में प्रस्तुत इस शोधपत्र को त्रिभुवन विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृति देने और उचित मूल्यांकन के लिए सिफारिश करती हूँ ।

.....

डॉ.श्वेता दीप्ति

शोधनिर्देशक

उपप्राध्यापक

हिन्दी केंद्रीय विभाग

त्रिभुवन विश्वविद्यालय कीर्तिपुर, काठमान्डौ ।

दिनांक :

त्रिभुवन विश्वविद्यालय

मानविकी तथा सामाजिक शास्त्र संकाय

हिंदी केन्द्रीय विभाग

कीर्तिपुर, काठमान्डौ

स्वीकृति प्रमाणपत्र

त्रिभुवन विश्वविद्यालय मानविकी तथा सामाजिक शास्त्र संकाय अन्तर्गत हिन्दी केन्द्रीय विभाग की छात्रा अंशु कुमारी झा द्वारा तैयार किया गया **"तुलसीदास रचित रामचरितमानस में निहित समन्वयवाद"** शीर्षक का शोधपत्र आवश्यक मूल्यांकन कर स्वीकृत किया गया है ।

मूल्यांकन समिति

क.सं.	**पद**	**नाम**	**हस्ताक्षर**
१.	विभागीय प्रमुख	**डा.संजीता वर्मा**	.....
२.	शोधनिर्देशक	**उप प्रा. डा.श्वेता दीप्ति**	.....
३.	बाह्य परीक्षक		.....

दिनांक :

भूमिका

प्रस्तुत शोधपत्र मेरे द्वारा स्नातकोत्तर चतुर्थ सत्र के लिए लिखा गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ही नहीं हिन्दु धर्म में तुलसीदास और उनके द्वारा रचित रामचरितमानस का एक विशिष्ट स्थान है। गोस्वामी तुलसीदास एक महान हिन्दू संत, समाजसुधारक के साथ ही दर्शनशास्त्र और कई प्रसिद्ध किताबों के भी रचयिता थे । राम के प्रति अथाह प्रेम की वजह से ही वे महान महाकाव्य रामचरित मानस के लेखक बने । तुलसीदास को हमेशा बाल्मिकी (संस्कृत में रामायण और हनुमान चालीसा के वास्तविक रचयिता) के अवतरण के रुप में प्रशंसा मिली है। बचपन से घर में माँ तथा खास कर बाबु जी से रामायण के विषय में सुनती आई थी । बाद में स्नातकोत्तर में नामांकन के बाद तुलसीदास और रामचरितमानस के विषय में विस्तार से अध्ययन का अवसर मिला और इस महाग्रंथ से सम्बन्धित कई बातों को गहनता से जान पाई । बचपन से जिस ग्रंथ को सिर्फ धार्मिक ग्रंथ के रुप में जाना था उसे एक साहित्यिक दृष्टिकोण से जानने का अवसर मिला और यही मेरे शोधग्रंथ का आधार भी बना । आज बाबु जी भौतिक रुप से हमारे बीच नहीं हैं किन्तु रामायण से जुड़ने का श्रेय मैं उन्हें देती हूँ और इस शोध को पूरा करने में उनके आशीर्वाद की ऋृणी हूँ ।

मैं आभारी हूँ अपनी निर्देशिका डा. श्वेता दीप्ति की जिन्होंने मुझे हौसला प्रदान किया और विषय से सम्बन्धित हर पहलु पर मेरी सहायता की । जिसके बिना शायद यह कार्य सम्भव नहीं था । आभारी हूँ विभागीय प्रमुख डा. संजीता वर्मा की जिनका प्रोत्साहन मुझे मिलता रहा है। विभाग के सभी गुरुवर्ग का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ ।

अंशु कुमारी झा

एम.ए. चतुर्थ सेमेस्टर

विषय सूची

क्र.सं. विवरण पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

१.१ शोधपरिचय

१.२ शोध प्रयोजन

१.३ समस्या कथन

१.४ शोध कार्य का उद्देश्य

१.५ पूर्व कार्य की समीक्षा

१.६ शोध कार्य का औचित्य

१.७ अध्ययन की सीमा

१.८ शोधविधि

१.९ शोधपत्र की रुपरेखा

द्वितीय : अध्याय

२.१ तुलसीदास का जीवन परिचय

२.२ जाति एवं वंश

२.३ माता पिता

२.४ गुरु

२.५ बाल्यकाल और आर्थिक स्थिति

२.६ मुख्य रचनाएँ

तृतीय अध्याय

३.१ तुलसीदास के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएं

३.२ यज्ञोपवीत

३.३ विवाह

३.४ आराध्य दर्शन

३.५ रत्नावली का महाप्रस्थान

३.६ केशवदास से संबद्ध घटना

३.७ अकबर के दरबार में बंदी बनाया जाना

३.८ जहांगीर को तुलसी दर्शन

३.९ दांपत्य जीवन

३.१० वैराग्य की प्रेरणा

३.११ तुलसी का निवासस्थान

३.१२ विरोध और सम्मान

३.१३ जीवन की सांध्य वेला

चतुर्थ अध्याय

४.१ रामचरितमानस संक्षिप्त परिचय

४.२ तुलसी के राम

४.३ रामचरित मानस की भाषा और वर्तनी

४.४ रामचरितमानस में समन्वयवाद

पंचम अध्याय

५.१ उपसंहार

सन्दर्भ ग्रंथ

प्रथम : अध्याय

१.१ शोधपरिचय

प्रस्तुत शोधपत्र में तुलसीदास रचित रामचरितमानस के विभिन्न पहलू पर चर्चा की गई है । भक्तिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि के रुप में तुलसीदास को जाना जाता है । तुलसीदास सगुण धारा के आधार कवि हैं । तुलसी के राम जन जन के राम हैं जो हर घर और हर दिल में पाए जाते हैं । तुलसीदास ने विविध धार्मिक रचनाओं के माध्यम से मानवीय करूणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्घाटन किया है ।

१.२ शोध प्रयोजन

प्रस्तुत शोधपत्र **"तुलसीदास रचित रामचरितमानस में निहित समन्वयवाद"** चतुर्थ सत्र के अंतिम पत्र ५७० के लिए तैयार किया गया है । शोध का आधार सम्बन्धित पुस्तक का अध्ययन, पुस्तकालय और गुगल पुस्तक है ।

१.३ समस्या कथन

तुलसीदास ने रामचरितमानस, कवितावली, विनय पत्रिका, दोहावली, उत्तर रामचरित आदि ग्रंथों के माध्यम से, अपनी रससिक्त लेखनी से, सरल शब्द सर्जना से राम के चरित्र को जैसा प्रस्तुत किया, वैसा कोई अन्य नहीं कर सका । तुलसीदास जब राम को राजा बना देते हैं तब ऐसा लगता है कि राजा शब्द केवल राम के लिए ही बना है । गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाजवाद की स्थापना करना चाहा है । सत्य भी तो है कि सामाजिक मूल्य व्यक्ति के हित और स्वार्थ से ऊपर होते हैं । राम ने भी समाजवाद के इस अर्थ को अपने जीवन में उतारा और अपने आचरणों से लोगों को समझाया भी । वैसे तो संपूर्ण रामचरित मानस यहीं सीख देता है । वास्तव में समाजवाद राम के चरित्र में विशेष महत्त्व रखता है । सत्ता सुख को त्यागकर, समाजवाद को ढोकर राम ने अपने साहस का परिचय दिया है । त्याग की भावना साहसिक कृत्य का सर्वोच्च उदाहरण है । अगर व्यक्ति में साहस नहीं है, तो जीवन नहीं है । साहस, सत्‌जीवन का आधार है ।

राम का चरित्र लोक मानस का आदर्श चरित्र है । वे हमारे दैनिक जीवन के प्रेरणा स्रोत हैं । वे आदर्श व्यक्ति हैं । महानायक हैं । वे ईश्वर के अवतार हैं । दीनानाथ हैं । वे सबके

हैं । सभी उनके हैं । ऐसा उदाहरण अन्य कहीं शायद ही प्राप्त हो कि हम जिस सामाजिक ढाँचों पर इतना जोर शोर से सोचते हैं, उसके विषय में बिना कुछ कहें ही राम ने सब कुछ कह दिया । राम ने अपने समय के अनेक विरोधी संस्कृतियों, साधनाओं, जातियों, आचार निष्ठाओं और विचार पद्धतियों को आत्मसात् करते हुए उनका समन्वय करने का साहस किया । साहस के लिए शारीरिक और भौतिक बलिष्ठता की आवश्यकता नहीं पड़ती, हृदय में पवित्रता और चरित्र में दृढ़ता की आवश्यकता पड़ती है । साहस का यह गुण राम में पूर्ण रूप से था । तभी तो उन्होंने कदम कदम पर साहसिक कार्यों का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

१.४ शोध कार्य का उद्देश्य

इस शोधकार्य के अर्न्तगत विषय वस्तु से सम्बन्धित निम्नलिखित उद्देश्यों को उजागर किया गया है –

क. तुलसीदास का साहित्यिक व्यक्तित्व

ख. तुलसीदास की रचनाएँ

ग. रामचरितमानस की विशेषता और उसके समन्वयवादी स्वरुप को स्थापित करना ।

घ.तुलसी की भाषा, शैली आदि ।

१.५ पूर्व कार्य की समीक्षा

तुलसीदास हिन्दी साहित्य के इतिहास में सर्वविख्यात व्यक्तित्व हैं । तुलसीदास एवं उनके द्वारा रचित रामचरितमानस हमारे पाठयक्रम में शामिल है इसलिए स्वाभाविक तौर पर हमारी रुचि इसके प्रति रही है । मानस भक्तिकाल की अद्भुत कृति है । इस पर पर्याप्त शोध कार्य हुए हैं । इसलिए एम ए की परीक्षा के लिए तैयार यह शोधपत्र कोई नया और महान कार्य है यह कहने की धृष्टता मैं नहीं कर सकती । यह महज एक कोशिश है जो उधार पर आधारित है ।

१.६ शोध कार्य का औचित्य

रामचरिमानस भक्तिकाल की प्रतिनिधि कृति है । इसका अध्ययन हमें इतिहास, पुराण और हिन्दु धर्म से जोड़ता है । इतिहास की कथाओं को जानने और समझने का अवसर मिलता है । इस कृति का चाहे जितनी भी बार अधययन किया जाय कुछ न कुछ नया हमें इसमें मिलता है । इसलिए इसमें शोध की कई सम्भावनाएँ निहित हैं ।

१.७ अध्ययन की सीमा

इस शोध कार्य में भक्त कवि तुलसीदास की प्रतिनिधि कृति **रामचरितमानस** को विषय बनाया गया है । इसलिए स्वाभाविक रुप से तुलसीदास और मानस पर विस्तार से ध्यान दिया गया है । किन्तु इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोधपत्र में तुलसीदास और उनकी रचनाओं से सम्बन्धित कई पहलुओं का साधारण अध्ययन और आपके जीवन से जुड़े अन्य पक्षों पर भी ध्यान दिया गया है ।

१.८ शोधविधि

प्रस्तुत शोधपत्र में विषय से सम्बन्धित पुस्तकों के अध्ययन के अलावा निर्देशक के अनुभवों तथा गुगल पुस्तक एवं विकिपीडिया की सहायता ली गई है । साथ ही पुस्तकालय का भरपूर उपयोग किया गया है ।

१.९ शोधपत्र की रुपरेखा

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय में शोध से सम्बन्धित सभी आवश्यक उपकरणों की चर्चा की गई है ।

द्वितीय अध्याय

इस अध्याय में तुलसीदास के व्यक्तित्व और रचनाओं पर प्रकाश डाला गया है ।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में तुलसीदास के व्यक्तित्व से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय में तुलसी रचित **रामचरितमानस** पर विशद चर्चा की गई है। **पंचम अध्याय**

पंचम अध्याय में शोध निष्कर्ष के साथ ही शोधपत्र का उपसंहार और सन्दर्भ पुस्तक सूची के साथ समापन किया गया है।

द्वितीय : अध्याय

२.१ तुलसीदास का जीवन परिचय

तुलसीदास का जीवन परिचय

प्रयाग के पास बाँदा जिले में राणापुर नामक एक ग्राम है । वहाँ आत्माराम दुबे नाम के एक प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण रहते थे । उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था । संवत १५५४ की श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन अभुक्त मूल नक्षत्र में इन्हीं भाग्यवान दम्पति के यहाँ बारह महीने तक गर्भ में रहने के पश्चात गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म हुआ । जन्मते समय बालक तुलसीदास रोए नहीं, किंतु उनके मुख से 'राम' का शब्द निकला । उनके मुख में बत्तीसों दाँत मौजूद थे ।

उनका शारीरिक डील-डौल पाँच वर्ष के बालक का सा था । इस प्रकार के अद्‌भुत बालक को देखकर पिता अमंगल की शंका से भयभीत हो गए और उसके संबंध में कई प्रकार की कल्पनाएँ करने लगे ।

माता हुलसी को यह देखकर बड़ी चिंता हुई । उन्होंने बालक के अनिष्ट की आशंका से दशमी की रात को नवजात शिशु को अपनी दासी के साथ उसके ससुराल भेज दिया और दूसरे दिन स्वयं इस असार संसार से चल बसीं । दासी ने, जिसका नाम चुनिया था, बड़े प्रेम से बालक का पालन पोषण किया । जब तुलसीदास लगभग साढ़े पाँच वर्ष के हुए, चुनिया का भी देहांत हो गया, अब तो बालक अनाथ हो गया । वह द्वार द्वार भटकने लगा । इस पर जगज्जननी पार्वती को उस होनहार बालक पर दया आई । वे ब्राह्मणी का वेश धारण कर प्रतिदिन उसके पास जातीं और उसे अपने हाथों से भोजन करा जातीं ।

इधर भगवान शंकरजी की प्रेरणा से रामशैल पर रहने वाले श्री अनंतानंदजी के प्रिय शिष्य श्री नरहर्यानंदजी (नरहरिजी) ने इस बालक को ढूँढ निकाला और उसका नाम रामबोला रखा । उसे वे अयोध्या ले गए और वहाँ संवत १५६१ माघ शुक्ल पंचमी शुक्रवार को उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराया । बिना सिखाए ही बालक रामबोला ने गायत्री मंत्र का उच्चारण किया, जिसे देखकर सब लोग चकित हो गए । इसके बाद नरहरि स्वामी ने

वैष्णवों के पाँच संस्कार करके रामबोला को राममंत्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराने लगे ।

बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी । एक बार गुरुमुख से जो सुन लेते थे, उन्हें वह कण्ठस्थ हो जाता था । वहाँ से कुछ दिन बाद गुरु शिष्य दोनों सूकर क्षेत्र (सोरों) पहुँचे । वहाँ श्री नरहरिजी ने तुलसीदासजी को रामचरित सुनाया । कुछ दिन बाद वे काशी चले आए । काशी में शेष सनातनजी के पास रहकर तुलसीदास ने पंद्रह वर्ष तक वेद वेदांग का अध्ययन किया । इधर उनकी लोकवासना कुछ जागृत हो उठी और अपने विद्यागुरु से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि को लौट आए । वहाँ आकर उन्होंने देखा कि उनका परिवार नष्ट हो चुका है । उन्होंने विधिपूर्वक अपने पिता आदि का श्राद्ध किया और वहीं रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे ।

संवत १५८३ ज्येष्ठ शुक्ल १३ गुरुवार को भारद्वाज गोत्र की एक सुंदरी कन्या के साथ उनका विवाह हुआ और वे सुखपूर्वक अपनी नवविवाहिता वधू के साथ रहने लगे । एक बार उनकी स्त्री भाई के साथ अपने मायके चली गई । पीछे-पीछे तुलसीदासजी भी वहाँ जा पहुँचे । उनकी पत्नी ने इस पर उन्हें बहुत धिक्कारा और कहा कि मेरे इस हाड़ मांस के शरीर में जितनी तुम्हारी आसक्ति है, उससे आधी भी यदि भगवान में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो गया होता । तुलसीदासजी को ये शब्द लग गए । वे एक क्षण भी नहीं रुके, तुरंत वहाँ से चल दिए । वहाँ से चलकर तुलसीदासजी प्रयाग आए । वहाँ उन्होंने गृहस्थवेश का परित्याग कर साधुवेश ग्रहण किया । फिर तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे । मानसरोवर के पास उन्हें काकभुशुण्डिजी के दर्शन हुए ।

काशी में तुलसीदासजी रामकथा कहने लगे । वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमानजी का पता बताया । हनुमानजी से मिलकर तुलसीदासजी ने उनसे श्री रघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की । हनुमानजी ने कहा– तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन होंगे । इस पर तुलसीदासजी चित्रकूट की ओर चल पड़े । चित्रकूट पहुँचकर रामघाट पर उन्होंने अपना आसन जमाया । एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले थे । मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए । उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुंदर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष बाण लिए जा रहे हैं । तुलसीदासजी उन्हें देखकर मुग्ध हो गए, परंतु उन्हें पहचान न सके । पीछे से हनुमानजी ने आकर उन्हें सारा भेद बताया, तो वे

बड़ा पश्चाताप करने लगे । हनुमानजी ने उन्हें सांत्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे ।

संवत १६०७ की मौनी अमावस्या बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्रीराम पुनः प्रकट हुए । उन्होंने बालक रूप में तुलसीदासजी से कहा– बाबा! हमें चंदन दो । हनुमानजी ने सोचा, वे इस बार भी धोखा न खा जाएँ, इसलिए उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा–

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर ।

तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर ॥

तुलसीदासजी उस अद्‌भुत छबि को निहारकर शरीर की सुधि भूल गए । भगवान ने अपने हाथ से चंदन लेकर अपने तथा तुलसीदासजी के मस्तक पर लगाया और अंतर्धान हो गए ।

संवत १६२८ में ये हनुमानजी की आज्ञा से अयोध्या की ओर चल पड़े । उन दिनों प्रयाग में माघ मेला था । वहाँ कुछ दिन वे ठहर गए । पर्व के छः दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए । वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकर क्षेत्र में अपने गुरु से सुनी थी । वहाँ से ये काशी चले आए और वहाँ प्रह्लादघाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया । वहाँ उनके अंदर कवित्व शक्ति का स्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य-रचना करने लगे । परंतु दिन में वे जितने पद्य रचते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते । यह घटना रोज घटती । आठवें दिन तुलसीदासजी को स्वप्न हुआ । भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्यरचना करो । तुलसीदासजी की नींद उचट गई । वे उठकर बैठ गए । उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए । तुलसीदासजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया । शिवजी ने कहा 'तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य रचना करो । मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी ।' इतना कहकर श्री गौरीशंकर अंतर्धान हो गए । तुलसीदासजी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से अयोध्या चले आए ।

संवत १६३१ का प्रारंभ हुआ । उस साल रामनवमी के दिन प्राय: वैसा ही योग था जैसा त्रेतायुग में रामजन्म के दिन था । उस दिन प्रात:काल तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारंभ की । दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिन में ग्रंथ की समाप्ति हुई । संवत १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में रामविवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गए । इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदासजी काशी चले आए । वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया । रात को पुस्तक श्री विश्वनाथजी के मंदिर में रख दी गई । सबेरे जब पट खोला गया तो उस पर लिखा हुआ पाया गया 'सत्यं शिवं सुंदरम' और नीचे भगवान शंकर के हस्ताक्षर थे । उस समय उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं सुंदरम' की आवाज भी सुनी ।

इधर पंडितों ने जब यह बात सुनी तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई । वे दल बाँधकर तुलसीदासजी की निन्दा करने लगे और उस पुस्तक को भी नष्ट कर देने का प्रयत्न करने लगे । उन्होंने पुस्तक चुराने के लिए दो चोर भेजे । चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदासजी की कुटी के आसपास दो वीर धनुष बाण लिए पहरा दे रहे हैं । वे बड़े ही सुंदर, श्याम और गौर वर्ण के थे । उनके दर्शन से चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गई । उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया, और भजन में लग गए । तुलसीदासजी ने अपने लिए भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा सामान लुटा दिया, पुस्तक अपने मित्र टोडरमल के यहाँ रख दी । इसके बाद उन्होंने एक दूसरी प्रति लिखी । उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की जाने लगीं । पुस्तक का प्रचार दिनोंदिन बढ़ने लगा ।

इधर पंडितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वतीजी को उस पुस्तक को देखने की प्रेरणा की । श्री मधुसूदन सरस्वतीजी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर यह सम्मति लिख दी–

आनन्दकानने ह्यस्मिंजंगमस्तुलसीतरु: ।

कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता ॥

-इस काशीरूपी आनन्दवन में तुलसीदास चलता फिरता तुलसी का पौधा है । उसकी कवितारूपी मंजरी बड़ी ही सुंदर है, जिस पर श्रीरामरूपी भँवरा सदा मँडराया करता है ।'

पंडितों को इस पर भी संतोष नहीं हुआ । तब पुस्तक की परीक्षा का एक उपाय और सोचा गया । भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उसके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया । मंदिर बंद कर दिया गया । प्रातःकाल जब मंदिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है । अब तो पंडित लोग बड़े लज्जित हुए । उन्होंने तुलसीदासजी से क्षमा माँगी और भक्ति से उनका चरणोदक लिया ।

उसके बाद तुलसीदासजी असीघाट पर रहने लगे । रात को एक दिन कलियुग मूर्तरूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें त्रास देने लगा । गोस्वामीजी ने हनुमानजी का ध्यान किया । हनुमानजी ने उन्हें विनय के पद रचने को कहा, इस पर गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका लिखी और भगवान के चरणों में उसे समर्पित कर दी । श्रीराम ने उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिए और तुलसीदासजी को निर्भय कर दिया । संवत १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को असीघाट पर गोस्वामीजी ने राम राम करते हुए अपने शरीर का परित्याग कर दिया । गोस्वामी तुलसीदासजी की पावन स्मृति में श्रावण शुक्ल सप्तमी को तुलसी जयंती के रूप में बड़ी श्रद्धापूर्वक मनाया जाता है । इस दिन श्रीरामचरितमानस का पाठ भी कराया जाता है ।

संस्कृत से वास्वतिक रामायण को अनुवादित करने वाले तुलसीदास जी हिन्दी और भारतीय तथा विश्व साहित्य के महान कवि हैं । तुलसीदास के द्वारा ही बनारस के प्रसिद्ध संकट मोचन मंदिर की स्थापना हुयी । अपनी मृत्यु तक वो वाराणसी में ही रहे । वाराणसी का तुलसी घाट का नाम उन्हीं के नाम पर पड़ा है ।

गोस्वामी तुलसीदास एक महान हिन्दू संत, समाजसुधारक के साथ ही दर्शनशास्त्र और कई प्रसिद्ध किताबों के भी रचयिता थे । राम के प्रति अथाह प्रेम की वजह से ही वे महान महाकाव्य रामचरित मानस के लेखक बने । तुलसीदास को हमेशा बाल्मिकी (संस्कृत में रामायण और हनुमान चालीसा के वास्तविक रचयिता) के अवतरण के रुप में प्रशंसा मिली । तुलसीदास ने अपना पूरा जीवन शुरुआत से अंत तक बनारस में ही व्यतीत किया ।

तुलसी का बचपन बड़े कष्टों में बीता । माता पिता दोनों चल बसे और इन्हें भीख मांगकर अपना पेट पालना पड़ा था । इसी बीच इनका परिचय रामभक्त साधुओं से हुआ

और इन्हें ज्ञानार्जन का अनुपम अवसर मिल गया । पत्नी के व्यंग्यबाणों से विरक्त होने की लोकप्रचलित कथा का कोई प्रमाण नहीं मिलता । तुलसी भ्रमण करते रहे और इस प्रकार समाज की तत्कालीन स्थिति से इनका सीधा संपर्क हुआ । इसी दीर्घकालीन अनुभव और अध्ययन का परिणाम तुलसी की अमूल्य कृतियां हैं, जो उस समय के भारतीय समाज के लिए तो उन्नायक सिद्ध हुई ही, आज भी जीवन को मर्यादित करने के लिए उतनी ही उपयोगी हैं । तुलसीदास द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या ३९ बताई जाती है । इनमें रामचरित मानस, कवितावली, विनयपत्रिका, दोहावली, गीतावली, जानकीमंगल, हनुमान चालीसा, बरवै रामायण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

२.२ जाति एवं वंश

जाति और वंश के सम्बन्ध में तुलसीदास ने कुछ स्पष्ट नहीं लिखा है । कवितावली एवं विनयपत्रिका में कुछ पंक्तियां मिलती हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे–

दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को

जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को ।

(विनयपत्रिका)

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हों ।

मोको न लेनो न देनो कछु कलि भूलि न रावरी और चितैहौ ॥

जानि के जोर करौं परिनाम तुम्हैं पछितैहौं पै मैं न भितैहैं

बाह्मण ज्यों उंगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिए न हितै हौं ।

जाति पांति का प्रश्न उठने पर वह चिढ़ गये हैं । कवितावली की निम्नांकित पंक्तियों में उनके अंतर का आक्रोश व्यक्त हुआ है –

"धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब,

काहू की जाति बिगारी न सोऊ ।"

"मेरे जाति पांति न चहौं काहू का जाति पांति,

मेरे कोऊ काम को न मैं काहू के काम को ।"

राजापुर से प्राप्त तथ्यों के अनुसार भी वे सरयूपारीण थे । तुलसी साहिब के आत्मोल्लेख एवं मिश्र बंधुओं के अनुसार वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । जबकि सोरों से प्राप्त तथ्य उन्हें सना ब्राह्मण प्रमाणित करते है, लेकिन "दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को' के आधार पर उन्हें शुक्ल ब्राह्मण कहा जाता है । परंतु शिवसिंह "सरोज' के अनुसार सरबरिया ब्राह्मण थे ।

ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने के कारण कवि ने अपने विषय में "जायो कुल मंगन' लिखा है । तुलसीदास का जन्म अर्थहीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जिसके पास जीविका का कोई ठोस आधार और साधन नहीं था । माता पिता की स्नेहिल छाया भी सर पर से उठ जाने के बाद भिक्षाटन के लिए उन्हें विवश होना पड़ा ।

२.३ माता पिता

तुलसीदास के माता पिता के संबंध में कोई ठोस जानकारी नहीं है । प्राप्त सामग्रियों और प्रमाणों के अनुसार उनके पिता का नाम आत्माराम दूबे था । किन्तु भविष्यपुराण में उनके पिता का नाम श्रीधर बताया गया है । रहीम के दोहे के आधार पर माता का नाम हुलसी बताया जाता है ।

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय ।

गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सों सुत होय ॥

२.४ गुरु

तुलसीदास के गुरु के रुप में कई व्यक्तियों के नाम लिए जाते हैं । भविष्यपुराण के अनुसार राघवानंद, विलसन के अनुसार जगन्नाथ दास, सोरों से प्राप्त तथ्यों के अनुसार नरसिंह चौधरी तथा ग्रियर्सन एवं अंतर्साक्ष्य के अनुसार नरहरि तुलसीदास के गुरु थे । राघवनंद के

एवं जगन्नाथ दास गुरु होने की असंभवता सिद्ध हो चुकी है । वैष्णव संप्रदाय की किसी उपलब्ध सूची के आधार पर ग्रियर्सन द्वारा दी गई सूची में, जिसका उल्लेख राघवनंद तुलसीदास से आठ पीढ़ी पहले ही पड़ते हैं । ऐसी परिस्थिति में राघवानंद को तुलसीदास का गुरु नहीं माना जा सकता ।

सोरों से प्राप्त सामग्रियों के अनुसार नरसिंह चौधरी तुलसीदास के गुरु थे । सोरों में नरसिंह जी के मंदिर तथा उनके वंशजों की विद्यमानता से यह पक्ष संपुष्ट हैं । लेकिन महात्मा बेनी माधव दास के "मूल गोसाईंचरित' के अनुसार हमारे कवि के गुरु का नाम नरहरि है ।

२.५ बाल्यकाल और आर्थिक स्थिति

तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहिर्साक्ष्यों से उनके माता पिता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर प्रकाश नहीं पड़ता । केवल "मूल गोसाईं चरित' की एक घटना से उनकी चिंत्य आर्थिक स्थिति पर क्षीण प्रकाश पड़ता है । उनका यज्ञोपवीत कुछ ब्राह्मणों ने सरयू के तट पर कर दिया था । उस उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि किसी सामाजिक और जातीय विवशता या कर्तव्य बोध से प्रेरित होकर बालक तुलसी का उपनयन जाति वालों ने कर दिया था ।

तुलसीदास का बाल्यकाल घोर अर्थदारिद्रय में बीता । भिक्षोपजीवी परिवार में उत्पन्न होने के कारण बालक तुलसीदास को भी वही साधन अंगीकृत करना पड़ा । कठिन अर्थ संकट से गुजरते हुए परिवार में नये सदस्यों का आगमन हर्षजनक नहीं माना गया –

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,

भयो परिताप पाय जननी जनक को ।

बारें ते ललात बिललात द्वार(द्वार दीन,

जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को ।

(कवितावली)

मातु पिता जग जाय तज्यो विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई ।

नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि ललाई ।

राम सुभाउ सुन्यो तुलसी प्रभु, सो कह्यो बारक पेट खलाई ।

स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई ॥

होश संभालने के पुर्व ही जिसके सर पर से माता-पिता के वात्सल्य और संरक्षण की छाया सदा (सर्वदा के लिए हट गयी, होश संभालते ही जिसे एक मुट्ठी अन्न के लिए द्वार-द्वार विलविलाने को बाध्य होना पड़ा, संकटकाल उपस्थित देखकर जिसके स्वजन परिजन दर किनार हो गए, चार मुट्ठी चने भी जिसके लिए जीवन के चरम प्राप्य (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) बन गए, वह कैसे समझे कि विधाता ने उसके भाल में भी भलाई के कुछ शब्द लिखे हैं । उक्त पदों में व्यंजित वेदना का सही अनुभव तो उसे ही हो सकता है, जिसे उस दारुण परिस्थिति से गुजरना पड़ा हो। ऐसा ही एक पद विनयपत्रिका में भी मिलता है –

द्वार-द्वार दीनता कही काढि रद परिपा हूं

हे दयालु, दुनी दस दिसा दुख-दोस-दलन-छम कियो संभाषन का हूं।

तनु जन्यो कुटिल कोट ज्यों तज्यों मातु-पिता हूं ।

काहे को रोष-दोष काहि धौं मेरे ही अभाग मो सी सकुचत छुइ सब छाहूं

(विनयपत्रिका, २७५)...

भलि भारत भूमि

भलि भारत भूमि भले कुल जन्मु समाजु सरीरु भलो लहि कै।

करषा तजि कै परुषा बरषा हिम मारुत धाम सदा सहि कै ॥

जो भजै भगवानु सयान सोई तुलसी हठ चातकु ज्यों ज्यौं गहि कै।

न तु और सबै बिषबीज बए हर हाटक कामदुहा नहि कै ॥

(तुलसीदास)

तुलसी की चौपाइयां

किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनूरूप ॥

जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ ।

सोइ सोइ भाव दिखावअइ आपनु होइ न सोइ ॥

तुलसीदास की मान्यता है कि निर्गुण ब्रह्म राम भक्त के प्रेम के कारण मनुष्य शरीर धारण कर लौकिक पुरुष के अनुरूप विभिन्न भावों का प्रदर्शन करते हैं । नाटक में एक नट अर्थात् अभिनेता अनेक पात्रों का अभिनय करते हुए उनके अनुरूप वेषभूषा पहन लेता है तथा अनेक पात्रों अर्थात् चरितों का अभिनय करता है । जिस प्रकार वह नट नाटक में अनेक पात्रों के अनुरूप वेष धारण करने तथा उनका अभिनय करने से वे पात्र नहीं हो जाता, नट ही रहता है उसी प्रकार रामचरितमानस में भगवान राम ने लौकिक मनुष्य के अनुरूप जो विविध लीलाएँ की हैं उससे भगवान राम तत्वतः वही नहीं हो जाते ,राम तत्वतः निर्गुण ब्रह्म ही हैं । तुलसीदास ने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि उनकी इस लीला के रहस्य को बुद्धिहीन लोग नहीं समझ पाते तथा मोहमुग्ध होकर लीला रूप को ही वास्तविक समझ लेते हैं । आवश्यकता तुलसीदास के अनुरूप राम के वास्तविक एवं तात्त्विक रूप को आत्मसात् करने की है ।

भगवान शंकरजी की प्रेरणा से रामशैल पर रहने वाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने इस बालक को ढूँढ़ निकाला और उसका नाम रामबोला रखा । उसे वे अयोध्या ले गये और वहाँ संवत १५६१ माघ शुक्ल पंचमी शुक्रवार को उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराया । बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया, जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये । इसके बाद नरहरि स्वामी ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके रामबोला को राममन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या ही में रहकर उन्हें विद्याध्ययन कराने लगे । बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी । एक बार गुरुमुख से जो सुन लेते थे, उन्हें वह कंठस्थ हो जाता था । वहाँ से कुछ दिन बाद गुरु

शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे । वहाँ श्री नरहरि जी ने तुलसीदास को रामचरित सुनाया । कुछ दिन बाद वह काशी चले आये । काशी में शेषसनातन जी के पास रहकर तुलसीदास ने पन्द्रह वर्ष तक वेद वेदांग का अध्ययन किया । इधर उनकी लोकवासना कुछ जाग्रत हो उठी और अपने विद्यागुरु से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि को लौट आये । वहाँ आकर उन्होंने देखा कि उनका परिवार सब नष्ट हो चुका है । उन्होंने विधिपूर्वक अपने पिता आदि का श्राद्ध किया और वहीं रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे ।

गोस्वामीजी श्रीसम्प्रदाय के आचार्य रामानन्द की शिष्यपरम्परा में थे । इन्होंने समय को देखते हुए लोकभाषा में 'रामायण' लिखा । इसमें ब्याज से वर्णाश्रमधर्म, अवतारवाद, साकार उपासना, सगुणवाद, गो ब्राह्मण रक्षा, देवादि विविध योनियों का यथोचित सम्मान एवं प्राचीन संस्कृति और वेदमार्ग का मण्डन और साथ ही उस समय के विधर्मी अत्याचारों और सामाजिक दोषों की एवं पन्थवाद की आलोचना की गयी है । गोस्वामीजी पन्थ व सम्प्रदाय चलाने के विरोधी थे । उन्होंने व्याज से भ्रातृप्रेम, स्वराज्य के सिद्धान्त , रामराज्य का आदर्श, अत्याचारों से बचने और शत्रु पर विजयी होने के उपायस सभी राजनीतिक बातें खुले शब्दों में उस कड़ी जासूसी के जमाने में भी बतलायीं, परन्तु उन्हें राज्याश्रय प्राप्त न था । लोगों ने उनको समझा नहीं । रामचरितमानस का राजनीतिक उद्देश्य सिद्ध नहीं हो पाया । इसीलिए उन्होंने झुँझलाकर कहा :

"रामायण अनुहरत सिख, जग भई भारत रीति ।

तुलसी काठहि को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ।"

तुलसीदास रचित रामचरित मानस इतनी लोकप्रिय है कि मुर्ख से लेकर महापण्डित तक के हाथों में आदर से स्थान पाती है । उस समय की सारी शंकाओं का रामचरितमानस में उत्तर है । अकेले इस ग्रन्थ को लेकर यदि गोस्वामी तुलसीदास चाहते तो अपना अत्यन्त विशाल और शक्तिशाली सम्प्रदाय चला सकते थे । यह एक सौभाग्य की बात है कि आज यही एक ग्रन्थ है, जो साम्प्रदायिकता की सीमाओं को लाँघकर सारे देश में व्यापक और सभी मत मतान्तरों को पूर्णतया मान्य है । सबको एक सूत्र में ग्रंथित करने का जो काम पहले शंकराचार्य स्वामी ने किया, वही अपने युग में और उसके पीछे आज भी गोस्वामी

तुलसीदास ने किया । रामचरितमानस की कथा का आरम्भ ही उन शंकाओं से होता है जो कबीरदास की साखी पर पुराने विचार वालों के मन में उठती हैं । तुलसीदासजी स्वामी रामानन्द की शिष्यपरम्परा में थे, जो रामानुजाचार्य के विशिष्टद्वैत सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त है । परन्तु गोस्वामीजी की प्रवृत्ति साम्प्रदायिक न थी । उनके ग्रन्थों में अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का सुन्दर समन्वय पाया जाता है । इसी प्रकार वैष्णव, शैव, शाक्त आदि साम्प्रदायिक भावनाओं और पूजापद्धतियों का समन्वय भी उनकी रचनाओं में पाया जाता है । वे आदर्श समुच्चयवादी सन्त कवि थे ।

२.६ मुख्य रचनाएँ

मुख्य रचनाएँ

अपने १२६ वर्ष के दीर्घ जीवन काल में तुलसीदास जी ने कुल २२ कृतियों की रचना की है जिनमें से पाँच बड़ी एवं छः मध्यम श्रेणी में आती हैं । इन्हें संस्कृत विद्वान् होने के साथ ही हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ कवियों में एक माना जाता है । तुलसीदास जी को महर्षि वाल्मीकि का भी अवतार माना जाता है जो मूल आदिकाव्य रामायण के रचयिता थे ।

रचना सामान्य परिचय

रामचरितमानस

"रामचरित" (राम का चरित्र) तथा "मानस" (सरोवर) शब्दों के मेल से "रामचरितमानस" शब्द बना है । अतः रामचरितमानस का अर्थ है "राम के चरित्र का सरोवर" । सर्वसाधारण में यह "तुलसीकृत रामायण" के नाम से जाना जाता है तथा यह हिन्दू धर्म की महान् काव्य रचना है ।

दोहावली दोहावली में दोहा और सोरठा की कुल संख्या ५७३ है । इन दोहों में से अनेक दोहे तुलसीदास के अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं और उनसे लिये गये है ।

कवितावली सोलहवीं शताब्दी में रची गयी कवितावली में श्री रामचन्द्र जी के इतिहास का वर्णन कवित्त, चौपाई, सवैया आदि छंदों में की गई है । रामचरितमानस के जैसे ही कवितावली में सात काण्ड हैं ।

गीतावली गीतावली, जो कि सात काण्डों वाली एक और रचना है, में श्री रामचन्द्र जी की कृपालुता का वर्णन है । सम्पूर्ण पदावली राम-कथा तथा रामचरित से सम्बन्धित है । मुद्रित संग्रह में ३२८ पद हैं ।

विनय पत्रिका विनय पत्रिका में २२८ स्तुति गान हैं जिनमें से प्रथम ४३ स्तुतियाँ विविध देवताओं की हैं और शेष रामचन्द्र जी की ।

कृष्ण गीतावली कृष्ण गीतावली में श्रीकृष्ण जी ६१ स्तुतियाँ है । कृष्ण की बाल्यावस्था और 'गोपी उद्धव संवाद' के प्रसंग कवित्व व शैली की दृष्टि से अत्यधिक सुंदर हैं ।

रामलला नहछू यह रचना सोहर छन्दों में है और राम के विवाह के अवसर के नहछू का वर्णन करती है । नहछू नख काटने एक रीति है, जो अवधी क्षेत्रों में विवाह और यज्ञोपवीत के पूर्व की जाती है ।

वैराग्य संदीपनी यह चौपाई (दोहों में रची हुई है । दोहे और सोरठे ४८ तथा चौपाई की चतुष्पदियाँ ज्ञद्ध हैं । इसका विषय नाम के अनुसार वैराग्योपदेश है ।

रामाज्ञा प्रश्न रचना अवधी में है और तुलसीदास की प्रारम्भिक कृतियों में है । यह एक ऐसी रचना है, जो शुभाशुभ फल विचार के लिए रची गयी है किंतु यह फल विचार तुलसीदास ने रामकथा की सहायता से प्रस्तुत किया है ।

जानकी मंगल इसमें गोस्वामी तुलसीदास जी ने आद्याशक्ति भगवती श्री जानकी जी तथा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के मंगलमय विवाहोत्सव का बहुत ही मधुर शब्दों में वर्णन किया है ।

सतसई दोहों का एक संग्रह ग्रंथ है । इन दोहों में से अनेक दोहे 'दोहावली' की विभिन्न प्रतियों में तुलसीदास के अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं और उनसे लिये गये है ।

पार्वती मंगल इसका विषय शिव (पार्वती विवाह है । 'जानकी मंगल' की भाँति यह भी सोहर और हरिगीतिका छन्दों में रची गयी है । इसमें सोहर की १४८ द्विपदियाँ तथा १६ हरिगीतिकाएँ हैं । इसकी भाषा भी जानकी मंगल की भाँति अवधी है ।

बरवै रामायण बरवै रामायण रचना के मुद्रित पाठ में स्फुट ६९ बरवै हैं, जो 'कवितावली' की ही भांति सात काण्डों में विभाजित है ।

हनुमान चालीसा इसमें प्रभु राम के महान् भक्त हनुमान के गुणों एवं कार्यों का चालीस (४०) चौपाइयों में वर्णन है । यह अत्यन्त लघु रचना है जिसमें पवनपुत्र श्री हनुमान जी की सुन्दर स्तुति की गई है ।

तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा । तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया । हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनयपत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया । श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया । संवत १६८० में श्रावण कृष्ण सप्तमी शनिवार को तुलसीदास जी ने "राम राम" कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया । तुलसीदास के निधन के संबंध में निम्नलिखित दोहा बहुत प्रचलित है(

संवत सोलह सौ असी ,असी गंग के तीर ।

श्रावण शुक्ला सप्तमी ,तुलसी तज्यो शरीर ॥

तृतीय : अध्याय

३.१ तुलसीदास के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएं

तुलसीदास के जीवन की कुछ घटनाएं एवं तिथियां भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । कवि के जीवनवृत्त और महिमामय व्यक्तित्व पर उनसे प्रकाश पड़ता है ।

३.२ यज्ञोपवीत

मूल गोसाईं चरित के अनुसार तुलसीदास का यज्ञोपवीत माघ शुक्ला पंचमी सं० १५६१ में हुआ –

पन्द्रह सै इकसठ माघसुदी । तिथि पंचमि औ भृगुवार उदी ।

सरजू तट विप्रन जग्य किए । द्विज बालक कहं उपबीत किए ॥

कवि के माता पिता की मृत्यु कवि के बाल्यकाल में ही हो गई थी ।

३.३ विवाह

जनश्रुतियों एवं रामायणियों के विश्वास के अनुसार तुलसीदास विरक्त होने के पूर्व भी कथावाचन करते थे । युवक कथावाचक की विलक्षण प्रतिभा और दिव्य भगवद्भक्ति से प्रभावित होकर रत्नावली के पिता पं० दीन बंधु पाठक ने एक दिन, कथा के अन्त में, श्रोताओं के विदा हो जाने पर, अपनी बारह वर्षीया कन्या उसके चरणों में सौंप दी । मूल गोसाईं चरित के अनुसार रत्नावली के साथ युवक तुलसी का यह वैवाहिक सूत्र सं० १५८३ की ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी, दिन गुरुवार को जुड़ा था –

पंद्रह सै पार तिरासी विषै ।

सुभ जेठ सुदी गुरु तेरसि पै ।

अधिराति लगै जु फिरै भंवरी ।

दुलहा दुलही की परी पंवरी ॥

३.४ आराध्य दर्शन

भक्त शिरोमणि तुलसीदास को अपने आराध्य के दर्शन भी हुए थे । उनके जीवन के वे सर्वोत्तम और महत्तम क्षण रहे होंगे । लोक श्रुतियों के अनुसार तुलसीदास को आराध्य के दर्शन चित्रकूट में हुए थे । आराध्य युगल राम लक्ष्मण को उन्होंने तिलक भी लगाया था (

चित्रकूट के घाट पै, भई संतन के भीर ।

तुलसीदास चंदन घिसै, तिलक देत रघुबीर ॥

मूल गोसाईं चरित के अनुसार कवि के जीवन की वह पवित्रतम तिथि माघ अमावस्या (बुधवार), सं० १६०७ को बताया गया है ।

सुखद अमावस मौनिया, बुध सोरह सै सात ।

जा बैठे तिसु घाट पै, विरही होतहि प्रात ॥

गोस्वामी तुलसीदास के महिमान्वित व्यक्तित्व और गरिमान्वित साधना को ज्योतित करने वाली एक और घटना का उल्लेख मूल गोसाईं चरित में किया गया है । तुलसीदास नंददास से मिलने बृंदावन पहुंचे । नंददास उन्हें कृष्ण मंदिर में ले गए । तुलसीदास अपने आराध्य के अनन्य भक्त थे । तुलसीदास राम और कृष्ण की तात्त्विक एकता स्वीकार करते हुए भी राम रुप श्यामघन पर मोहित होने वाले चातक थे । अतः घनश्याम कृष्ण के समक्ष नतमस्तक कैसे होते । उनका भाव विभोर कवि का कण्ठ मुखर हो उठा :

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ ।

तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बान लो हाथ ॥

इतिहास साक्षी दे या नहीं दे, किन्तु लोकश्रुति साक्षी देती है कि कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति में बदल गई थी ।

३.५ रत्नावली का महाप्रस्थान

रत्नावली का बैकुंठगमन 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार सं० १५८९ में हुआ । किंतु राजापुर की सामग्रियों से उसके दीर्घ जीवन का समर्थन होता है ।

महात्मा बेनी माधव दास ने मूल गोसाईं चरित में मीराबाई और तुलसीदास के पत्राचार का उल्लेख किया किया है । अपने परिवार वालों से तंग आकर मीराबाई ने तुलसीदास को पत्र लिखा । मीराबाई पत्र के द्वारा तुलसीदास से दीक्षा ग्रहण करनी चाही थी । मीरा के पत्र के उत्तर में विनयपत्रिका का निम्नांकित पद की रचना की गई ।

जाके प्रिय न राम वैदेही

तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।

सो छोड़िये

तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी ।

बलिगुरु तज्यो कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद मंगलकारी ।

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं ।

अंजन कहां आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहां लौं ।

तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो ।

जासों हाय सनेह राम(पद, एतोमतो हमारो ॥

तुलसीदास ने मीराबाई को भक्तिपथ के बाधकों के परित्याग का परामर्श दिया था ।

३.६ केशवदास से संबद्ध घटना

मूल गोसाईं चरित के अनुसार केशवदास गोस्वामी तुलसीदास से मिलने काशी आए थे । उचित सम्मान न पा सकने के कारण वे लौट गए ।

३.७ अकबर के दरबार में बंदी बनाया जाना

तुलसीदास की ख्याति से अभिभूत होकर अकबर ने तुलसीदास को अपने दरबार में बुलाया और कोई चमत्कार प्रदर्शित करने को कहा । यह प्रदर्शन प्रियता तुलसीदास की प्रकृति और प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी, अतः ऐसा करने से उन्होंने इनकार कर दिया । इस पर अकबर ने उन्हें बंदी बना लिया । तदुपरांत राजधानी और राजमहल में बंदरों का अभूतपूर्व एवं अद्‌भुत उपद्रव शुरु हो गया । अकबर को बताया गया कि यह हनुमान जी का क्रोध है । अकबर को विवश होकर तुलसीदास को मुक्त कर देना पड़ा ।

३.८ जहांगीर को तुलसी दर्शन

जिस समय वे अनेक विरोधों का सामना कर सफलताओं और उपलब्धियों के सर्वोच्च शिखर का स्पर्श कर रहे थे, उसी समय दर्शनार्थ जहांगीर के आने का उल्लेख किया गया मिलता है ।

३.९ दांपत्य जीवन

सुखद दांपत्य जीवन का आधार अर्थ प्राचुर्य नहीं, पति पत्नी का पारस्परिक प्रेम, विश्वास और सहयोग होता है । तुलसीदास का दांपत्य जीवन आर्थिक विपन्नता के बावजूद संतुष्ट और सुखी था । भक्तमाल के प्रियादास की टीका से पता चलता है कि जीवन के वसंत काल में तुलसी पत्नी के प्रेम में सराबोर थे । पत्नी का वियोग उनके लिए असह्य था । उनकी पत्नी निष्ठा दिव्यता को उल्लंघित कर वासना और आसक्ति की ओर उन्मुख हो गई थी ।

रत्नावली के मायके चले जाने पर शव के सहारे नदी को पार करना और सपं के सहारे दीवाल को लांघकर अपने पत्नी के निकट पहुंचना । पत्नी की फटकार ने भोगी को जोगी, आसक्त को अनासक्त, गृहस्थ को सन्यासी और भांग को भी तुलसीदल बना दिया । वासना और आसक्ति के चरम सीमा पर आते ही उन्हें दूसरा लोक दिखाई पड़ने लगा । इसी लोक में उन्हें मानस और विनयपत्रिका जैसी उत्कृष्टतम रचनाओं की प्रेरणा और शिक्षा मिली ।

३.१० वैराग्य की प्रेरणा

तुलसीदास के वैराग्य ग्रहण करने के दो कारण हो सकते हैं । प्रथम, अतिशय आसक्ति और वासना की प्रतिक्रिया ओर दूसरा, आर्थिक विपन्नता । पत्नी की फटकार ने उनके मन के समस्त विकारों को दूर कर दिया । दूसरे कारण विनयपत्रिका के निम्नांकित पदांशों से प्रतीत होता है कि आर्थिक संकटों से परेशान तुलसीदास को देखकर सन्तों ने भगवान राम की शरण में जाने का परामर्श दिया (

दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन मोहूं

तो से पसु पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर निबाहूं ॥

तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति विनाहू ।

नाम की महिमा, सीलनाथ को, मेरो भलो बिलोकि, अबतें ॥

रत्नावली ने भी कहा था कि इस अस्थि चर्ममय देह में जैसी प्रीति है, ऐसी ही प्रीति अगर भगवान राम में होती तो भव भीति मिट जाती । इसीलिए वैराग्य की मूल प्रेरणा भगवदाराधन ही है ।

३.११ तुलसी का निवासस्थान

विरक्त हो जाने के उपरांत तुलसीदास ने काशी को अपना मूल निवास स्थान बनाया । वाराणसी के तुलसीघाट पर स्थित तुलसीदास द्वारा स्थापित अखाड़ा, मानस और विनयपत्रिका के प्रणयन कक्ष, तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त होने वाली नाव के शेषांग, मानस की १७०४ ई० की पांडुलिपि, तुलसीदास की चरण पादुकाएं आदि से पता चलता है कि तुलसीदास के जीवन का सर्वाधिक समय यहीं बीता । काशी के बाद कदाचित् सबसे अधिक दिनों तक अपने आराध्य की जन्मभूमि अयोध्या में रहे । मानस के कुछ अंश का अयोध्या में रचा जाना इस तथ्य का पुष्कल प्रमाण है ।

तीर्थाटन के क्रम में वे प्रयाग, चित्रकूट, हरिद्वार आदि भी गए । बालकांड के "दधि चिउरा उपहार अपारा । भरिभरि कांवर चले कहारा" तथा "सूखत धान परा जनु पानी" से उनका मिथिला-प्रवास भी सिद्ध होता है । धान की खेती के लिए भी मिथिला ही प्राचीन काल से

प्रसिद्ध रही है । धान और पानी का संबंध ज्ञान बिना मिथिला में रहे तुलसीदास कदाचित् व्यक्त नहीं करते । इससे भी साबित होता है कि वे मिथिला में रहे ।

३.१२ विरोध और सम्मान

जनश्रुतियों और अनेक ग्रंथों से पता चलता है कि तुलसीदास को काशी के कुछ अनुदार पंडितों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था । उन पंडितों ने रामचरितमानस की पांडुलिपि को नष्ट करने और कवि के जीवन पर संकट ढालने के भी प्रयास किए थे । जनश्रुतियों से यह भी पता चलता है कि रामचरितमानस की विमलता और उदात्तता के लिए विश्वनाथ जी के मन्दिर में उसकी पांडुलिपि रखी गई थी और भगवान विश्वनाथ का समर्थन मानस को मिला था । अन्ततः, विरोधियों को तुलसी के सामने नतमस्तक होना पड़ा था । विरोधों का शमन होते ही कवि का सम्मान दिव्यगंध की तरह बढ़ने और फैलने लगा । कवि के बढ़ते हुए सम्मान का साक्ष्य कवितावली की निम्नांकित पंक्तियां भी देती हैं –

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागिबस

खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो ।

मानस वचनकाय किए पाप सति भाय

राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो ।

राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप

तुलसी से जग मानियत महामुनी सो ।

अति ही अभागो अनुरागत न राम पद

मूढ़ एतो बढ़ो अचरज देखि सुनी सो ॥

(कवितावली, उत्तर, ७२)

तुलसी अपने जीवनकाल में ही वाल्मीकि के अवतार माने जाने लगे थे ।

त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन ।

इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन ॥

पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी ।

राम चरण रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी ।

संसार अपार के पार को सगुन रुप नौका लिए ।

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भए ॥

(भक्तमाल, छप्पय १२९)

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक श्री मधुसूदन सरस्वती को तुलसीदास का समसामयिक बताया है। उनके साथ उनके वादविवाद का उल्लेख किया है और मानस तथा तुलसी की प्रशंसा में लिखा उनका श्लोक भी उद्धृत किया है। उस श्लोक से भी तुलसीदास की प्रशस्ति का पता मालूम होता है।

आनन्दकाननेह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुस्

कविता मंजरी यस्य, राम भ्रमर भूषिता ।

३.१३ जीवन की सांध्य वेला

तुलसीदास को जीवन की सांध्य वेला में अतिशय शारीरिक कष्ट हुआ था । तुलसीदास बाहु की पीड़ा से व्यथित हो उठे तो असहाय बालक की भांति आराध्य को पुकारने लगे थे ।

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं,

बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।

बरसत बारि पोर जारिये जवासे जस,

रोष बिनु दोष, धूम(मूलमलिनाई है ॥

करुनानिधान हनुमान महा बलबान,

हेरि हैसि हांकि फूंकि फौजें तै उड़ाई है ।

खाए हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,

केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है ।

(हनुमान बाहुक, ३५)

निम्नांकित पद से तीव्र पीड़ानुभूति और उसके कारण शरीर की दुर्दशा का पता चलता हैं–

पायेंपीर पेटपीर बांहपीर मुंहपीर

जर्जर सकल सरी पीर मई है ।

देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,

मोहि पर दवरि दमानक सी दई है ॥

हौं तो बिन मोल के बिकानो बलि बारे हीं तें,

ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है ।

कुंभज के निकट बिकल बूड़े गोखुरनि,

हाय राम रा ऐरती हाल कहुं भई है ॥

दोहावली के तीन दोहों में बाहु पीड़ा की अनुभूति व्यक्त हुई है–

तुलसी तनु सर सुखजलज, भुजरुज गज बर जोर ।

दलत दयानिधि देखिए, कपिकेसरी किसोर ॥

भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रबेस ।

बिहगराज बाहन तुरत, काढिअ मिटे कलेस ॥

बाहु विटप सुख विहंग थलु, लगी कुपीर कुआगि ।

राम कृपा जल सींचिए, बेगि दीन हित लागि ॥

आजीवन काशी में भगवान विश्वनाथ का राम कथा का सुधापान कराते कराते असी गंग के तीर पर सं० १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन तुलसीदास पांच भौतिक शरीर का परित्याग कर शाश्वत यशःशरीर में प्रवेश कर गए ।

चतुर्थ : अध्याय

४.१ रामचरितमानस संक्षिप्त परिचय

श्री राम चरित मानस अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा १६वीं सदी में रचित एक महाकाव्य है । इस ग्रन्थ को हिंदी साहित्य की एक महान कृति माना जाता है । इसे सामान्यतः 'तुलसी रामायण' या 'तुलसीकृत रामायण' भी कहा जाता है । रामचरितमानस भारतीय संस्कृति में एक विशेष स्थान रखता है । उत्तर भारत में 'रामायण' के रूप में बहुत से लोगों द्वारा प्रतिदिन पढ़ा जाता है । शरद नवरात्रि में इसके सुन्दर काण्ड का पाठ पूरे नौ दिन किया जाता है । रामायण मण्डलों द्वारा शनिवार को इसके सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है ।

श्री रामचरित मानस के नायक राम हैं जिनको एक महाशक्ति के रूप में दर्शाया गया है जबकि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में श्री राम को एक मानव के रूप में दिखाया गया है । तुलसी के प्रभु राम सर्वशक्तिमान होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं ।

त्रेता युग में हुए ऐतिहासिक राम(रावण युद्ध पर आधारित और हिन्दी की ही एक लोकप्रिय भाषा अवधी में रचित रामचरितमानस को विश्व के १०० सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में ४६ वाँ स्थान दिया गया ।

परिचय

रामचरित मानस १५वीं शताब्दी के कवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखा गया महाकाव्य है । जैसा तुलसीदास ने रामचरित मानस के बालकाण्ड में स्वयं लिखा है कि उन्होंने रामचरित मानस की रचना का आरम्भ अयोध्या में विक्रम संवत १६३१ (१५७४ ईस्वी) को रामनवमी के दिन (मंगलवार) किया था । गीताप्रेस गोरखपुर के श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के अनुसार रामचरितमानस को लिखने में गोस्वामी तुलसीदास जी को २ वर्ष ७ माह २६ दिन का समय लगा था और उन्होंने इसे संवत् १६३३ (१५७६ ईस्वी) के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम विवाह के दिन पूर्ण किया था । इस महाकाव्य की भाषा अवधी है जो हिंन्दी की ही एक शाखा है ।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने श्री रामचन्द्र के निर्मल एवं विशद चरित्र का वर्णन किया है । महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत रामायण को रामचरितमानस का आधार माना जाता है । यद्यपि रामायण और रामचरितमानस दोनों में ही राम के चरित्र का वर्णन है परंतु दोनों ही महाकाव्यों के रचने वाले कवियों की वर्णन शैली में उल्लेखनीय अन्तर है । जहाँ वाल्मीकि ने रामायण में राम को केवल एक सांसारिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया है वहीं तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम को भगवान विष्णु का अवतार माना है ।

रामचरितमानस को तुलसीदास ने सात काण्डों में विभक्त किया है । इन सात काण्डों के नाम हैं (बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड । छन्दों की संख्या के अनुसार बालकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड क्रमशः सबसे बड़े और छोटे काण्ड हैं । तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में हिन्दी के अलंकारों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है विशेषकर अनुप्रास अलंकार का । रामचरितमानस पर प्रत्येक हिंदू की अनन्य आस्था है और इसे हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है ।

संक्षिप्त मानस कथा

तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरित मानस की कुछ चौपाइयों को लेते हैं । बात उस समय की है जब मनु और सतरूपा परमब्रह्म की तपस्या कर रहे थे । कई वर्ष तपस्या करने के बाद शंकरजी ने स्वयं पार्वती से कहा कि मैं, ब्रह्मा और विष्णु कई बार मनु सतरूपा के पास वर देने के लिये आये, जिसका उल्लेख तुलसी दास जी द्वारा रचित रामचरितमानस में इस प्रकार मिलता है("बिधि हरि हर तप देखि अपारा, मनु समीप आये बहु बारा" । जैसा की उपरोक्त चौपाई से पता चलता है कि ये लोग तो कई बार आये यह कहने कि जो वर तुम माँगना चाहते हो माँग लोस पर मनु सतरूपा को तो पुत्र रूप में स्वयं परमब्रह्म को ही माँगना था फिर ये कैसे उनसे यानी शंकर, ब्रह्मा और विष्णु से वर माँगते? हमारे प्रभु श्रीराम तो सर्वज्ञ हैं । वे भक्त के ह्रदय की अभिलाषा को स्वतस् ही जान लेते हैं । जब २३ हजार वर्ष और बीत गये तो प्रभु श्रीराम के द्वारा आकाश वाणी होती है, "प्रभु सर्बग्य दास निज जानी, गति अनन्य तापस नृप रानी । माँगु माँगु बरु भइ नभ बानी, परम गँभीर कृपामृत सानी ॥" इस आकाश वाणी को जब मनु सतरूपा सुनते हैं तो उनका ह्रदय प्रफुल्लित हो उठता है । और जब स्वयं परमब्रह्म राम प्रकट होते हैं

तो उनकी स्तुति करते हुए मनु और सतरूपा कहते हैं, “सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू, बिधि हरि हर बंदित पद रेनू । सेवत सुलभ सकल सुखदायक, प्रणतपाल सचराचर नायक ॥” अर्थात् जिनके चरणों की वन्दना विधि, हरि और हर यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही करते है, तथा जिनके स्वरूप की प्रशंसा सगुण और निर्गुण दोनों करते हैं : उनसे वे क्या वर माँगें? इस बात का उल्लेख करके तुलसी बाबा ने उन लोगों को भी राम की ही आराधना करने की सलाह दी है जो केवल निराकार को ही परमब्रह्म मानते हैं ।रामचरितमानस में सात अध्याय हैं–

बालकाण्ड

बहुत समय पहले की बात है सरयू नदी के किनारे कोशल नामक राज्य था जिसकी राजधानी अयोध्या थी । अयोध्या के राजा का नाम दशरथ था, जिन की तीन पत्नियां थी । उनके पत्नियों का नाम था कौशल्या, कैकई और सुमित्रा । राजा दशरथ बहुत समय तक निसंतान थे और वह अपने सूर्यवंश की वृद्धि के लिए अर्थात अपने उत्तराधिकारी के लिए बहुत चिंतित थे । इसलिए राजा दशरथ ने अपने कुल गुरु ऋषि वशिष्ठ की सलाह मानकर पुत्र कमेस्टि यज्ञ करवाया, उस यज्ञ के फलस्वरुप राजा दशरथ को चार पुत्र प्राप्त हुए । उनकी पहली पत्नी कोशल्या से प्रभु श्री राम, कैकई से भारत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ । उनके चारों पुत्र दिव्य शक्तियों से परिपूर्ण और यशस्वी थे । उन चारों को राजकुमारों की तरह पाला गया, और उनको शास्त्रों और युद्ध कला की कला सिखाई गई ।

जब प्रभु श्री राम १६वर्ष के हुए तब एक बार ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आए और अपने यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले राछसों के आतंक के बारे में राजा दशरथ को बताया और उनसे सहायता मांगी । ऋषि विश्वामित्र की बात सुनकर राजा दशरथ उनकी सहायता करने के लिए तैयार हो गए और अपने सैनिक उनके साथ भेजने का आदेश दिया, पर ऋषि विश्वामित्र ने इस कार्य के लिए राम और लक्ष्मण का चयन किया । राम और लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम जाते हैं, और उनके यज्ञ मैं विघ्न डालने वाले राक्षसों का नाश कर देते हैं । इससे ऋषि विश्वामित्र प्रसन्न होकर राम और लक्ष्मण को अनेक दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं जिनसे आगे चलकर प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण अनेक दानवों का नाश करते हैं ।

दूसरी ओर जनक मिथिला प्रदेश के राजा थे और वह भी निसंतान थे । और संतान प्राप्ति के लिए वह भी बहुत चिंतित थे, तब एक दिन उनको गहरे कुंड में एक बच्ची मिली, तब राजा जनक का खुशी का ठिकाना ना रहा, और राजा जनक उस बच्ची को भगवान का वरदान मानकर उसे अपने महल ले आए । राजा जनक ने उस बच्ची का नाम सीता रखा । राजा जनक अपनी पुत्री सीता को बहुत ही अधिक स्नेह करते थे । सीता धीरे(धीरे बड़ी हुई, सीता गुण और अद्वितीय सुंदरता से परिपूर्ण थी । जब सीता विवाह योग्य हुई तब राजा जनक अपने प्रिय पुत्री सीता के लिए उनका स्वयंवर रखने का निश्चय किया । राजा जनक ने सीता के स्वयंवर में शिव धनुष को उठाने वाले और उस पर प्रत्यंचा चाहने वाले से अपनी प्रिय पुत्री सीता से विवाह करने की शर्त रखी । सीता के गुण और सुंदरता की चर्चा पहले से ही चारों तरफ फैल चुकी थी तो सीता के स्वयंवर की खबर सुनकर बड़े बड़े राजा सीता स्वयंवर में भाग लेने के लिए आने लगे । ऋषि विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मण के साथ सीता स्वयंवर को देखने के लिए राजा जनक के नगर मिथिला पहुंच ।

जब सीता से शादी करने की इच्छा लिए दूर दूर से राजा और महाराजा स्वयंवर में एकत्रित हुए तो स्वयंबर आरंभ हुआ बहुत सारे राजाओं ने शिव धनुष को उठाने की कोशिश की लेकिन कोई भी धनुष को हिला भी नहीं पा रहा था उठाना तो बहुत दूर की बात है, यह सब देख कर राजा जनक चिंतित हो गए तब ऋषि विश्वामित्र ने राजा जनक की चिंता दूर करते हुए अपने शिष्य राम को उठने का अनुमति दिया । प्रभु राम अपने गुरु को प्रणाम कर उठे और उन्होंने उस धनुष को बड़ी सरलता से उठा कर जब उस पर प्रत्यंचा चलाने लगे तो धनुष टूट गया । राजा दशरथ ने शर्त के अनुसार प्रभु श्रीराम से सीता का विवाह करने का निश्चय किया और साथ ही अपनी अन्य पुत्रियों का विवाह भी राजा दशरथ के पुत्रों से करवाने का उन्होंने विचार किया । इस प्रकार एक साथ ही राम का विवाह सीता से, लक्ष्मण का विवाह उर्मिला से, भरत का विवाह मांडवी से और शत्रुधन का विवाह श्रुतकीर्ति से हो गया । मिथिला में विवाह का एक बहुत बड़ा आयोजन हुआ और उनमें प्रभु राम और उनके भाइयों की विवाह संपन्न हुआ, विवाह के बाद बारात अयोध्या लौट आई ।

अयोध्याकाण्ड

राम और सीता के विवाह को १२वर्ष बीत गए थे और अब राजा दशरथ वृद्ध हो गए थे । वह अपने बड़े बेटे राम को अयोध्या के सिहासन पर बिठाना चाहते थे । तब एक शाम

राजा दशरथ की दूसरी पत्नी का कैकई अपनी एक चतुर दासी मंथरा के बहकावे में आकर राजा दशरथ से दो वचन मांगे.. "जो राजा दशरथ ने कई वर्ष पहले कई कई द्वारा जान बचाने के लिए कैकई को दो वचन देने का वादा किया था" कैकई ने राजा दशरथ से अपने पहले वचन के रूप में राम को ज्ञद्ध वर्ष का वनवास और दूसरे वचन के रूप में अपने पुत्र भरत को अयोध्या के राज सिहासन पर बैठाने की बात कही । कैकई की इन दोनों वचनों को सुनते ही राजा दशरथ का दिल टूट गया और वह कैकई को अपने इन वचनों पर दोबारा विचार करने के लिए बोले, और बोले कि हो सके तो अपने यह वचन वापस ले ले । पर कैकई अपनी बात पर अटल रही, तब ना चाहते हुए भी राजा दशरथ मे अपने प्रिय पुत्र राम को बुलाकर उन्हें १४वर्ष के लिए वनवास जाने को कहा ।

राम ने अपने पिता राजा दशरथ का बिना कोई विरोध किए उनकी आदेश स्वीकार कर लिया । जब सीता और लक्ष्मण को प्रभु राम के वनवास जाने के बारे में पता चला तो उन्होंने भी राम के साथ वनवास जाने की आग्रह किया, जब राम ने अपनी पत्नी सीता को अपने साथ वन ले जाने से मना किया तब सीता ने प्रभु राम से कहा कि जिस वन में आप जाएंगे वही मेरा अयोध्या है, और आपके बिना अयोध्या मेरे लिए नरक सामान है । लक्ष्मण के भी बहुत आग्रह करने पर भगवन राम ने उन्हें भी अपने साथ वन चलने की अनुमति दे दी । इस प्रकार राम सीता और लक्ष्मण अयोध्या से वन जाने के लिए निकल गए । अपने प्रिय पुत्र राम के वन जाने से दुखी होकर राजा दशरथ ने अपने प्राण त्याग दिए ।

इस दौरान भरत जो अपने मामा के यहां (ननिहाल) गए हुए थे,वह अयोध्या की घटना सुनकर बहुत ही ज्यादा दुखी हुए । भारत ने अपनी माता कैकई को अयोध्या के राज सिंहासन पर बैठने से मना कर दिया और वह अपने भाई राम को ढूंढते हुए वन में चले गए । वन में जाकर भरत राम लक्ष्मण और सीता से मिले और उनसे अयोध्या वापस लौटने का आग्रह किया तब राम ने अपने पिता के वचन का पालन करते हुए अयोध्या वापस नहीं लौटने का प्रण किया । तब भारत ने भगवान राम की चरण पादुका अपने साथ ले कर अयोध्या वापस लौट आए, और राम की चरण पादुका को अयोध्या के राजसिंहासन पर रख दिया, भरत राज दरबारियों से बोले कि जब तक भगवान राम वनवास से वापस नहीं लौटते तब तक उन की चरण पादुका अयोध्या के राज सिंहासन पर रखा रहेगा और मैं उनका एक दास बनकर यह राज चलाऊंगा ।

अरण्यकाण्ड

भगवान राम के वनवास को ज्ञघ बरस बीत गए थे और वनवास का अंतिम वर्ष था । भगवान राम, सीता और लक्ष्मण गोदावरी नदी के किनारे जा रहे थे, गोदावरी के निकट एक जगह सीता जी को बहुत पसंद आई उस जगह का नाम था पंचवटी । तब भगवान राम अपनी पत्नी की भावना को समझते हुए उन्होंने वनबास का शेष समय पंचवटी में ही बिताने का निर्णय लिया और वहीं पर वह तीनों कुटिया बनाकर रहने लगे । पंचवटी के जंगलों में ही एक दिन शूर्पणखा नाम की राक्षस औरत मिली और वह लक्ष्मण को अपने रूप रंग से लुभाना चाहती थी, जिसमें वह असफल रही तो उसने सीता को मारने का प्रयास किया, तब लक्ष्मण ने सूर्पनखा को रोकते हुए उसके नाक और कान काट दिए । जब इस बात की खबर शूर्पणखा के राक्षस भाई खर को पता चली तो वह अपने राक्षस साथियों के साथ राम, लक्ष्मण सीता जिस पंचवटी में कुटिया बनाकर रह रहे थे वहां पर उसने हमला कर दिया, भगवान राम और लक्ष्मण ने खर और उसके सभी राक्षसों का बद्ध कर दिया ।

जब इस घटना की खबर सूर्पनखा के दूसरे भाई रावण तक पहुंची तो उसने राक्षस मारीचि की मदद से भगवान राम की पत्नी सीता का अपहरण करने की योजना बनाई । रावण के कहने पर राक्षस मरीचि ने स्वर्ण मृग बनकर सीता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । स्वर्ण मिर्ग की सुंदरता पर मोहित होकर सीता ने राम को उसे पकड़ने को भेज दिया । भगवान राम रावण की इस योजना से अर्नाभिज्ञ थे क्योंकि भगवान राम तो अंतर्यामी थे, फिर भी अपनी पत्नी सीता की इच्छा को पूरा करने के लिए वह उस स्वर्ण मिर्ग के पीछे जंगल में चले गए और माता सीता की रक्षा के लिए अपने भाई लक्ष्मण को बोल दिए । कुछ समय बाद माता सीता ने भगवान राम की करुणा भरी मदद की आवाज सुनाई पड़ी तो माता सीता ने लक्ष्मण को भगवान राम की सहायता के लिए जबरदस्ती भेजने लगी । लक्ष्मण ने माता सीता को समझाने की बहुत कोशिश की कि भगवान राम अजय हैं, और उनका कोई भी कुछ नहीं कर सकता, इसलिए लक्ष्मण अपने भ्राता राम की आज्ञा का पालन करते हुए माता सीता की रक्षा करना चाहते थे ।

लक्ष्मण और माता सीता में बात इतनी बढ़ गई कि सीताजी ने लक्ष्मण को वचन देकर भगवान राम की सहायता करने के लिए लक्ष्मण को आदेश दे दिया । लक्ष्मण माता सीता

की आज्ञा मानना तो चाहते थे लेकिन वह सीता को कुटिया में अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे इसलिए लक्ष्मण कुटिया से जाते वक्त कुटिया के चारों ओर एक लक्ष्मण रेखा बनाई, ताकि कोई भी उस रेखा के अंदर नहीं प्रवेश कर सके और माता सीता को इस रेखा से बाहर नहीं निकलने का आग्रह किया । और फिर लक्ष्मण भगवान राम की खोज में निकल पड़े । इधर रावण जो घात लगाए बैठा था जब उसने से रास्ता साफ देखा तब वह एक साधु का वेश बनाकर माता सीता की कुटिया के आगे पहुंच गया और भिक्षा मांगने लगा । माता सीता रावण जो कि एक साधु के वेश में था उसकी कुटिलता को नहीं समझ पाई और उसके भ्रमजाल में आकर लक्ष्मण की बनाई गई लक्ष्मण रेखा के बाहर कदम रख दिया और रावण माता सीता को बलपूर्वक उठाकर ले गया ।

जब रावण सीता को बलपूर्वक अपने पुष्पक विमान में ले जा रहा था तो जटायु नाम का गिद्ध ने उसे रोकने की कोशिश की, जटायु ने माता सीता की रक्षा करने का बहुत प्रयास किया और जिसमें वह प्राणघातक रूप से घायल हो गया । रावण सीता को अपने पुष्पक विमान से उड़ा कर लंका ले गया और उन्हें राक्षसीयो की कड़ी सुरक्षा में लंका के अशोक वाटिका में डाल दिया । फिर रावण ने माता सीता के सामने उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट की, लेकिन माता सीता अपने पति भगवान राम के प्रति समर्पण होने के कारण रावण से विवाह करने के लिए मना कर दिया । इधर भगवान राम और लक्ष्मण माता सीता के अपहरण के बाद उनकी खोज करते हुए जटायु से मिले, तब उन्हें पता चला कि उनकी पत्नी सीता को लंकापति रावण उठाकर ले गया है । तब वह दोनों भाई सीता को बचाने के लिए निकल पड़े, भगवान राम और लक्ष्मण जब माता सीता की खोज कर रहे थे तब उनकी मुलाकात राक्षस कबंध और परम तपस्वी साध्वी शबरी से हुई । उन दोनों ने उन्हें सुग्रीव और हनुमान तक पहुंचाया और सुग्रीव से मित्रता करने की सुझाव दिया ।

किष्किन्धाकाण्ड

रामायण में वर्णित किष्किंधाकांड वानरों के गढ़ पर आधारित है । भगवान राम वहां पर अपने सबसे बड़े भक्त हनुमान से मिले । महाबली हनुमान वानरों में से सबसे महान नायक और सुग्रीव के पक्षपाती थे जिनको की किसकिंधा के सिहासन से भगा दिया गया था । हनुमान की मदद से भगवान राम और सुग्रीव की मित्रता हो गई और फिर सुग्रीव ने भगवान राम से अपने भाई बाली को मारने में उनसे मदद मांगी । तब भगवान राम ने

बाली का वध किया और फिर से सुग्रीव को किसकिंधा का सिहासन मिल गया, और बदले में सुग्रीव ने भगवान राम को उनकी पत्नी माता सीता को खोजने में सहायता करने का वचन दिया

हालांकि कुछ समय तक सुग्रीव अपने वचन को भूल कर अपनी शक्तियों और राजसुख का मजा लेने में मग्न हो गया, तब बाली की पत्नी तारा ने इस बात की खबर लक्ष्मण को दी, और लक्ष्मण ने सुग्रीव को संदेशा भेजवाया कि अगर वह अपना वचन भूल गया है तो वह वानर गढ़ को तबाह कर देंगे । तब सुग्रीव को अपना वचन याद आया और वह लक्ष्मण की बात मानते हुए अपने वानर के दलों को संसार के चारों कोनों में माता सीता की खोज में भेज दिया । उत्तर, पश्चिम और पूर्व दल के वानर खोजकर्ता खाली हाथ वापस लौट आए । दक्षिण दिशा का खोज दल अंगद और हनुमान के नेतृत्व में था, और वह सभी सागर के किनारे जाकर रुक गए । तब अंगद और हनुमान को जटायु का बड़ा भाई संपाती से यह सूचना मिली कि माता सीता को लंकापति नरेश रावण बलपूर्वक लंका ले गया है ।

सुन्दरकाण्ड

जटायु के भाई संपाती से माता सीता के बारे में खबर मिलते ही हनुमान जी ने अपना विशाल रूप धारण किया और विशाल समुद्र को पार कर लंका पहुंच गए । हनुमान जी लंका पहुंच कर वहां माता सीता की खोज शुरू कर दी लंका में बहुत खोजने के बाद हनुमान को सीता अशोक वाटिका में मिली । जहां पर रावण के बहुत सारी राक्षसी दासियां माता सीता को रावण से विवाह करने के लिए बाध्य कर रही थी । सभी राक्षसी दासियों के चले जाने के बाद हनुमान माता सीता तक पहुंचे और उनको भगवान राम की अंगूठी दे कर अपने राम भक्त होने का पहचान कराया । हनुमान जी ने माता सीता को भगवान राम के पास ले जाने को कहा, लेकिन माता सीता ने यह कहकर इंकार कर दिया कि भगवान राम के अलावा वह किसी और नर को स्पर्श करने की अनुमति नहीं देगी, माता सीता ने कहा कि प्रभु राम उन्हें खुद लेने आएंगे और अपने अपमान का बदला लेंगे ।

फिर हनुमान जी माता सीता से आज्ञा लेकर अशोक वाटिका में पेड़ों को उखाड़ना और तबाह करना शुरू कर देते हैं इसी बीच हनुमान जी रावण के ज्ञ पुत्र अक्षय कुमार का भी बद्ध कर देते हैं । तब रावण का दूसरा पुत्र मेघनाथ हनुमान जी को बंदी बनाकर रावण के

समक्ष दरबार में हाजिर करता है । हनुमान जी रावण के दरबार में रावण के समक्ष भगवान राम की पत्नी सीता को छोड़ने के लिए रावण को बहुत समझाते हैं । रावण क्रोधित होकर हनुमान जी की पूंछ में आग लगाने का आदेश देता है, हनुमान जी की पूंछ में आग लगते हैं वह उछलते हुए एक महल से दूसरे महल, एक छत से दूसरी छत पर जाकर पूरी लंका नगरी में आग लगा देते हैं । और वापस विशाल रूप धारण कर किष्किंधा पहुंच जाते हैं, वहां पहुंचकर हनुमान जी भगवान राम और लक्ष्मण को माता सीता की सारी सूचना देते हैं ।

लंकाकाण्ड

लंका कांड (युद्ध कांड) में भगवान राम की सेना और रावण की सेना के बीच युद्ध को दर्शाया गया है । भगवान राम को जब अपनी पत्नी माता सीता की सूचना हनुमान से प्राप्त होती है तब भगवान राम और लक्ष्मण अपने साथियों और वानर दल के साथ दक्षिणी समुंद्र के किनारे पर पहुंचते हैं । वहीं पर भगवान राम की मुलाकात रावण के भेदी भाई विभीषण से होती है, जो रावण और लंका की पूरी जानकारी वह भगवान राम को देते हैं । नल और नील नामक दो वानरों की सहायता से पूरा वानर दल मिलकर समुद्र को पार करने के लिए रामसेतु का निर्माण करते हैं, ताकि भगवान राम और उनकी वानर सेना लंका तक पहुंच सके । लंका पहुंचने के बाद भगवान राम और लंकापति रावण का भीषण युद्ध हुआ, जिसमें भगवान राम ने रावण का वध कर दिया । इसके बाद प्रभु राम ने विभीषण को लंका का सिहासन पर बिठा दिया ।

भगवान राम माता सीता से मिलने पर उन्हें अपनी पवित्रता सिद्ध करने के लिए अग्निपरीक्षा से गुजरने को कहते हैं, क्योंकि प्रभु राम माता सीता की पवित्रता के लिए फैली अफवाहों को गलत साबित करना चाहते हैं । जब माता सीता ने अग्नि में प्रवेश किया तो उन्हें कोई नुकसान नहीं हुआ वह अग्नि परीक्षा में सफल हो गई । अब भगवान राम माता सीता और लक्ष्मण वनवास की अवधि समाप्त कर अयोध्या लौट जाते हैं । और अयोध्या में बड़े ही हर्षोल्लास के साथ भगवान राम का राज्यभिषेक होता है । इस तरह से रामराज्य की शुरुआत होती है ।

उत्तरकाण्ड

उत्तरकांड महर्षि बाल्मीकि की वास्तविक कहानी का वाद का अंश माना जाता है । इस कांड में भगवान राम के राजा बनने के बाद भगवान राम अपनी पत्नी माता सीता के साथ सुखद जीवन व्यतीत करते हैं । कुछ समय बाद माता सीता गर्भवती हो जाती हैं, लेकिन जब अयोध्या के वासियों को माता सीता की अग्नि परीक्षा की खबर मिलती है तो आम जनता और प्रजा के दबाव में आकर भगवान राम अपनी पत्नी सीता को अनिच्छा से बन भेज देते हैं । वन में महर्षि बाल्मीकि माता सीता को अपनी आश्रम में आश्रय देते हैं, और वहीं पर माता सीता भगवान राम के दो जुड़वा पुत्रों लव और कुश को जन्म देती है । लव और कुश महर्षि वाल्मीकि के शिष्य बन जाते हैं और उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं ।

महर्षि बाल्मीकि ने यही रामायण की रचना की और लव कुश को इस का ज्ञान दिया । बाद में भगवान राम अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन करते हैं जिसमें महर्षि बाल्मीकि लव और कुश के साथ जाते हैं । भगवान राम और उनकी जनता के समक्ष लव और कुश महर्षि बाल्मीकि द्वारा रचित रामायण का गायन करते हैं । जब गायन करते हुए लव कुश को माता सीता को वनवास दिए जाने की खबर सुनाई जाती है तो भगवान राम बहुत दुखी होते हैं । तब वहां माता सीता आ जाती हैं । उसी समय भगवान राम को माता सीता लव कुश के बारे में बताती हैं.. भगवान राम को ज्ञात होता है कि लव कुश उनके ही पुत्र हैं । और फिर माता सीता धरती मां को अपनी गोद में लेने के लिए पुकारती हैं, और धरती के फटने पर माता सीता उसमें समा जाती हैं । कुछ वर्षों के बाद देवदूत आकर भगवान राम को यह सूचना देते हैं कि उनके रामअवतार का प्रयोजन अब पूरा हो चुका है, और उनका यह जीवन काल भी खत्म हो चुका है । तब भगवान राम अपने सभी सगे संबंधी और गुरुजनों का आशीर्वाद लेकर सरयू नदी में प्रवेश करते हैं । और वहीं से अपने वास्तविक विष्णु रूप धारण कर अपने धाम चले जाते हैं ।

४.२ तुलसी के राम

महर्षि वाल्मीकि के संस्कृत साहित्य से लेकर नरेश मेहता के 'संशय की एक रात' तक और वर्तमान के अन्य साहित्यकारों ने भिन्न भिन्न उपमाओं, अलंकारों, उद्‌भावनाओं,

कथोपकथनों, कथा प्रसंगों आदि से राम के चरित्र को वर्णित किया है। राम कथा को लोक मानस तक संप्रेषित करने का प्रयास किया है। हरिवंश पुराण, स्कंद पुराण, पद्म पुराण, भागवत पुराण, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, भृशुंडी रामायण, कंब रामायण आदि ग्रंथों द्वारा भी राम कथा का व्यापक प्रचार हुआ है। प्रतिमा नाटक, महावीर चरित, उदात्त राघव, कुन्दमाला, अनर्घराघव आदि नाटकों द्वारा भी राम कथा को लोकप्रिय बनाया गया है, परन्तु राम कथा को जो प्रसिद्धी गोस्वामी तुलसीदास द्वारा मिली, वह किसी अन्य ने नहीं दिया।

तुलसीदास ने रामचरितमानस, कवितावली, विनय पत्रिका, दोहावली, उत्तर रामचरित आदि ग्रंथों के माध्यम से, अपनी रससिक्त लेखनी से, सरल शब्द सर्जना से राम के चरित्र को जैसा प्रस्तुत किया, वैसा कोई अन्य नहीं कर सका । तुलसीदास जब राम को राजा बना देते हैं तब ऐसा लगता है कि राजा शब्द केवल राम के लिए ही बना है। गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाजवाद की स्थापना करना चाहा है। सत्य भी तो है कि सामाजिक मूल्य व्यक्ति के हित और स्वार्थ से ऊपर होते हैं । राम ने भी समाजवाद के इस अर्थ को अपने जीवन में उतारा और अपने आचरणों से लोगों को समझाया भी । वैसे तो संपूर्ण रामचरित मानस यहीं सीख देता है। वास्तव में समाजवाद राम के चरित्र में विशेष महत्त्व रखता है। सत्ता सुख को त्यागकर, समाजवाद को ढोकर राम ने अपने साहस का परिचय दिया है। त्याग की भावना साहसिक कृत्य का सर्वोच्च उदाहरण है। अगर व्यक्ति में साहस नहीं है, तो जीवन नहीं है। साहस, सत्‌जीवन का आधार है।

राम का चरित्र लोक मानस का आदर्श चरित्र है। वे हमारे दैनिक जीवन के प्रेरणा स्रोत हैं। वे आदर्श व्यक्ति हैं । महानायक हैं । वे ईश्वर के अवतार हैं । दीनानाथ हैं । वे सबके हैं । सभी उनके हैं । ऐसा उदाहरण अन्य कहीं शायद ही प्राप्त हो कि हम जिस सामाजिक ढाँचों पर इतना जोर-जोर से सोचते हैं, उसके विषय में बिना कुछ कहें ही राम ने सब कुछ कह दिया । राम ने अपने समय के अनेक विरोधी संस्कृतियों, साधनाओं, जातियों, आचार निष्ठाओं और विचार पद्धतियों को आत्मसात् करते हुए उनका समन्वय करने का साहस किया। साहस के लिए शारीरिक और भौतिक बलिष्ठता की आवश्यकता नहीं पड़ती, हृदय में पवित्रता और चरित्र में दृढ़ता की आवश्यकता पड़ती है। साहस का

यह गुण राम में पूर्ण रूप से था । तभी तो उन्होंने कदम कदम पर साहसिक कार्यों का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

राज्याभिषेक की तैयारी हो रही थी और पिता की आज्ञा पाकर सपत्नी वन जाने को तैयार हो जाना, साहस का ही तो परिणाम है । वे चाहते तो विद्रोह कर बैठते । संभव था कि कारागार में डाल दिए जाते । दर दर तो नहीं भटकना पड़ता । वैसे तो वे थे सर्व शक्तिमान ! उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं था, परन्तु पितृ आज्ञा को स्वीकार कर उन्होंने एक आदर्श प्रस्तुत किया । राम अयोध्या जैसे देश के युवराज थे । अपनी सारी विलासिता त्यागकर, गंगा तट से रथ भी वापस भेजकर, नंगे पाँव, वल्कल वस्त्र धारण करके वन(पथ पर चल पड़े । राम ने अपने साहस के बूते पर सामान्य जनों के कष्टों की अनुभूति करने के साथ ही आदर्श की भी स्थापना की । चित्रकूट में वास करते समय भेद रहित होकर कोल भीलों का साहचर्य लिया, -

'कोल किरात बेष सब आए । रचे परन तृन सदन सुहाए ॥

बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला । एक ललित लघु एक बिसाला ॥'

वन में ऋषि मुनियों के अस्थियों को देखकर, दूसरे के दुख से दुखी होकर निसिचर हीन करने का प्रण करना भी कम बड़ा साहसिक कार्य नहीं है ! -

'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

साहसी व्यक्ति में एक गुप्त शक्ति रहती है, जिसके बल पर वह दूसरे की रक्षा में अपना प्राण तक उत्सर्ग करने को तत्पर हो जाता है । देश, धर्म, जाति या परिवार वाले के लिए ही नहीं, संकट में पड़े अपरिचित व्यक्ति की सहायता के लिए भी तत्परता बनी रहती है । साहसी व्यक्ति दूसरे के लिए भी हर प्रकार के क्लेशों को हर्षित होकर सहन कर लेता है । राम ने अदम्य साहस का दृष्टांत उस समय भी प्रस्तुत किया, जब प्रवाहमय जलधि की जलधारा को स्थिर करने का निश्चय किया । सच ही, यह राम का साहस ही था कि समुद्र को मानव रूप धारण कर उनकी शरण में आना पड़ा । राम जैसा व्यक्ति ही संपूर्ण साहस

से यह कह सकता है कि प्रजा की खुशी के लिए अर्धांगिनी सीता का परित्याग करने में रंच मात्र भी क्लेश नहीं होगा ।

साहसी व्यक्ति कर्तव्यपरायण होता है । उसे अपने कर्मों पर अटूट विश्वास होता है । राम ने भी यहीं किया । वे अच्छी तरह से जानते थे कि रावण महाबलशाली है । उसमें अकूत शक्ति है । उसका बेटा इन्द्र को जीत चुका है । परन्तु सीता की रक्षा के लिए रावण जैसे महापराक्रमी से युद्ध कर के विजयश्री प्राप्त किया ।

अपने पूरे वनवास काल में राम ने अत्याचारी व्यक्तियों और अनीतिपूर्ण राज्यों का अंत करके जहाँ राजनैतिक स्थिति को दृढ़ किया, वहीं दंडक वन में खर, दूषण और तृशिरा बंधुओं का संहार भी किया । बालि का वध करके उसके छोटे भाई सुग्रीव को तथा रावण का वध करके उसके छोटे भाई विभीषण को राज्य देकर वसुधा को आसुरी प्रवृत्तियों से मुक्त किया । निषादराज गुह, पंपापुर के राजा सुग्रीव, विभीषण के अतिरिक्त अन्य वानर(भालुओं, कोल(किरातों के साथ मैत्री स्थापित किया । वन की वृद्धा भिलनी शबरी का जूठन खाया । राम के इस संपूर्ण व्यक्तित्व से उनकी साहसिक प्रवृत्ति ही प्रतिबिंबित होती है । उन्होंने अपने कर्मों से सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक, सभी क्षेत्रों में साहस का परिचय दिया है । निश्चय ही राम अपने इन्हीं गुणों के कारण आज भी मंदिरों के चहारदीवारों के कैद से मुक्त होकर समस्त जन मन के हृदय पर राज करते हैं । वे सबके प्रेरक हैं । सबके लिए एक्स्ट्रा एनर्जी हैं । राम को निम्नलिखित रूपों में सामाजिक अत्याचार दिखाई देता है, जिसे आज संस्कृति कहा जा रहा है । -

'बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । ते लंपट परधन परदारा ॥

मनहिं मातु पिता नहीं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥

अपने श्रेष्ठ आचरण तथा अद्‌भुत साहस के साथ राम ने जिस जीवन को भोगा, उसमें अनेक व्यक्तियों का सानिध्य रहा । उनके संपर्क में आने वाले व्यक्तियों में सरल एवं कूटिलमना, सभी थे । ऐसा देखा जा सकता है कि उनके संपर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति साहसी हो गया तथा अपने जीवन को धन्य कर लिया । राम भरत के भाई थे । राम के वन गमन के उपरांत भरत को ही सत्तारूढ़ होना था, लेकिन वे ननिहाल से आकर गद्दी पर नहीं बैठे । तपस्वी का जीवन व्यतित करते हुए प्रजा के सामने त्याग और

कर्तव्यपरायणता का आदर्श रखा तथा राम की ओर से चैदह वर्ष तक राज्य का प्रबंध किया । भरत पर राम को दृढ़ विश्वास भी तो था । -

'भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ ।

कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥'

लक्ष्मण भी राम के अनुज थे । उन्होंने भी राज सुख त्यागकर चौदह वर्ष तक क्षुब्ध और निद्रा को त्यागकर प्रतिबिम्ब की भाँति राम की सेवा किया और आर्दश स्थापना किया । वन जाते समय राम को पार उतारने के लिए केवट ने उनका पाँव धोने के हठ का साहस किया । उनके चरणामृत को लेकर परमगति को प्राप्त हुआ ।

राम के चरित्र के साथ मारीच का बहुत निकट का संबंध है । मारीच राम के पौरुष से परिचित था । मोक्ष प्राप्ति की लालसा में वह स्वर्ण हिरण बन बैठा । राम के संपर्क में आने पर समुद्र भी अपनी जलधाराओं को स्थिर करने का साहस कर लेता है । गिद्ध जटायु भी रावण जैसे पराक्रमी योद्धा से दो-दो हाथ करने का साहस कर लेता है । राम के संपर्क में आने पर हनुमान समुद्र को लांघकर लंका को जलाने का भी साहस कर लेते हैं । एक राजा के दरबार में जाकर, उसके सामने पाँव जमाने वाले अंगद का साहस भी राम से ही प्रेरित है । राम का साहस हमारी वृत्तियों को उर्ध्वगामी बनाने की प्रेरणा देता है ।

राम विष्णु के अवतार और परब्रह्म स्वरूप हैं । राम में शक्ति, सौन्दर्य तथा साहस का समन्वय है । उनका लोकरक्षक रूप प्रधान है । वे मर्यादा पुरुषोत्तम और आदर्श के प्रतिष्ठापक हैं । उन्होंने जीवन की अनेक उच्च भूमियाँ प्रस्तुत की हैं । राम ने गृहस्थ जीवन की उपेक्षा नहीं की, अपितु लोक सेवा और आदर्श गृहस्थ का उदाहरण उपस्थित करके सामान्य जन के जीवन स्तर को भी ऊँचा उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया । राम इतिहास ही नहीं, वर्तमान और भविष्य भी हैं । राम सृष्टि के कण-कण में विद्यमान हैं । वे अन्न और जल के समान सुलभ हैं । वर्तमान राजनैतिक आपाधापी, सामाजिक अस्थिरता और भौतिक आकर्षण के समय में राम के साहस और आदर्श का स्मरण होते ही एक आदर्श समाज की संरचना हृदय-पटल पर चित्रित हो जाती है । ऐसा समाज, जिसमें सभी व्यक्ति अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन करते हों । अनीति न हो । वैमनस्य न हो ।

पारस्परिक स्नेह हो । श्रम की महत्ता हो । सभी स्वावलंबी हो । कुंठा का नाम न हो । परोपकार अनिवार्य भाषा हो ।

आज हमें भी अपनी आंतरिक शक्तियों को एकत्रित कर सामाजिक बुराइयों के अंत का प्रण करना ही पड़ेगा । राम और उनके साहस को सार्थक करना ही पड़ेगा । तब पुनः विश्व में भारत का जयघोष होगा । समाजवाद का सोच सार्थक होगा । सामाजिक समरसता फैलेगी और सभी प्रकार के सुखों से देश भर जाएगा । तब पुनः लिखा जाएगा -

'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लछन हीना ॥

अल्प मृत्यु नहिं कबनिहु पीरा । सब सुन्दर सब निरुज सरीरा ॥

४.३ रामचरित मानस की भाषा और वर्तनी

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस की लोकप्रियता अद्वितीय है, परंतु इस ग्रंथ के किसी न किसी पहलू को लेकर बराबर विवाद भी उठते रहते हैं । रामचरितमानस की भाषा के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं । कोई इसे अवधी मानता है तो कोई भोजपुरी । कुछ लोक मानस की भाषा अवधी और भोजपुरी की मिलीजुली भाषा मानते हैं । मानस की भाषा बुंदेली मानने वालों की संख्या भी कम नहीं है ।

मानस में संस्कृत, फारसी और उर्दू के शब्दों की भरमार है । प्रकाशन विभाग द्वारा सन १९७८ में प्रकाशित पुस्तक 'रामायण, महाभारत एंड भागवत राइटर्स' के पृष्ठ११० पर मदन गोपाल ने रामचरितमानस की भाषा में के बारे में लिखते हुए कहा कि तुलसीदास अवधी और ब्रज भाषा में बराबर निष्णात थे । उन्होंने लगभग९०,००० संस्कृत शब्दों को गाँवों में प्रचलित किया, जबकि ४०,००० देसी शब्दों को को पढ़े लिखे लोगों के बीच लोकप्रिय बनाया ।

तुलसीदास ने अवधी और ब्रज भाषा के मिले जुले स्वरूप को प्रचलित किया । इसके साथ ही उन्होंने फारसी और अन्य भाषाओं के हजारो शब्दों का प्रयोग किया । तुलसीदास ने संज्ञाओं का प्रयोग क्रिया के रूप में किया तथा क्रियाओं का प्रयोग संज्ञा के रूप में । इस प्रकार के प्रयोगों के उदाहरण बिरले ही मिलते हैं । तुलसीदास ने भाषा को नया स्वरूप दिया ।

अभी हाल ही में चित्रकूट स्थित अंतरराष्ट्रीय मानस अनुसंधान केन्द्र के प्रमुख स्वामी रामभद्राचार्य ने रामचरितमानस का सम्पादन किया हैं । ग्रंथ की भूमिका में स्वामीजी ने रामचरितमानस की आज कल उपलब्ध प्रतियों की भाषा के बारे में कई मौलिक प्रश्न उठाए हैं । इन्हीं के आधार पर उन्होंने अपने संशोधनों का औचित्य भी प्रतिपादित किया है ।

स्वामी जी ने लिखा है कि रामचरितमानस के वर्तमान संस्करणों में कर्तृवाचक उकार शब्दों की बहुलता हैं । उन्होंने इसे अवधी भाषा की प्रकृति के विरुद्ध बताया है । इसी प्रकार उन्होंने उकार को कर्मवाचक शब्द का चिन्ह मानना भी अवधी भाषा के विपरीत बताया है । स्वामीजी अनुनासिकों को विभक्ति को द्योतक मानने को भी असंगत बताते हैं– 'जब तें राम ब्याहि घर आये' । कुछ अपवादों को छोड़कर अनावश्यक उकारांत कर्तृवाचक शब्दों के प्रयोग को स्वामी रामभद्राचार्य ने अवधी भाषा के विरुद्ध बताया है ।

उनके अनुसार मानस की प्रचीन प्रतियों में उकार और अनुनासिकों का चंद्रग्रहण नहीं लगा है । जैसे प्रचलित अयोध्या कांड में उकार की बहुलता है, उसी प्रकार अनावश्यक अनुनासिकों की प्रचुरता भी है, जिनकी अवधी भाषा में न तो आवश्यकता है और न ही कोई इनकी अर्थ बोधक भूमिका ।

स्वामी रामभद्राचार्य इस बात से तो सहमत हैं कि तुलसीदास 'ग्राम्य गिरा' के पक्षधर थे । परन्तु वे जायसी की गँवारू अवधी के पक्षधर नहीं थे । स्वामी रामभद्रचार्य ने 'न्ह' के प्रयोग को भी अनुचित और अनावश्यक बताया है । उनके अनुसार नकार के साथ हकार जोड़ना ब्रज भाषा का प्रयोग है अवधी का नहीं । स्वामीजी के अनुसार मानस की उपलब्ध प्रतियों में तुम के स्थान पर 'तुम्ह' और 'तुम्हहि' शब्दों के जो प्रयोग मिलते हैं वे अनुचित हैं । उन्होंने लिखा है कि बाँदा तथा बुंदेलखंड में तुम शब्द का ही प्रयोग होता है ।

'श' के प्रयोग के बारे में स्वामी रामभद्राचार्य को मानना है कि गोस्वामी तुलसीदास ने 'श' के स्थान 'स' का प्रयोग केवल वहीं किया है, जहाँ इसके प्रयोग से कोई आपत्तिजनक अर्थ न पैदा हो जाए ।

स्वामी रामभद्राचार्य ने प्रसंगों के आधार पर भी कुछ संशोधन किए हैं, परंतु उनके द्वारा किए गए ज्यादातर संशोधन मानस की भाषा पर आधारित हैं । शास्त्रों की बार बार दुहाई

देने वाले स्वामीजी ने अपनी बात को सिद्ध करने के लिए चौपाई की परिभाषा भी बदल दी है । पिंगल शास्त्र के अनुसार चौपाई में सोलह-सोलह मात्राओ की चार अर्धालियाँ होनी चाहिए, परन्तु स्वामीजी के अनुसार चौपाई वास्तव में ४ यतियों का छंद है । उन्होंने अपनी बात को सिद्ध करने के लिए हनुमान चालीसा का उदाहरण दिया है, जिसमें केवल ८० अर्धालियाँ हैं । इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त हैं कि बहुत से विद्वान हनुमान चालीसा को रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की रचना नहीं मानते हैं । अगर मान भी लिया जाए कि इसकी रचना गोस्वामी तुलसीदास ने ही की होगी, तो भी चालीसा का मतलब४० चौपाई नहीं है बल्कि४० पंक्तियाँ भी हो सकती हैं क्योंकि दो अर्धालियों को मिलाकर एक पंक्ति बनती है ।

रामचरित मानस की रचना आज से ४३२ वर्ष पहले की अवधी भाषा में की गई थी । डा. बाबुरम सक्सेना के अनुसार संघर्षी ध्वनि 'श' न तो प्राचीन अवधी की ध्वनि है और न ही आधुनिक अवधी की । मानस में 'ष' का प्रयोग 'ख' के स्थान पर किया गया है । डा. सक्सेना के अनुसार उकार को कर्म का चिन्ह मानना अनुनासिको का विभक्ति का द्योतक मानना, नकार के साथ हकार का जोड़ना और तुम के स्थान पर 'तुम्ह' और 'तुम्हहि' का प्रयोग तुलसीदास के समय में अवधी भाषा में होता था । अतः अगर तुलसीदास ने ऐसा प्रयोग किया है, तो इसे अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता ।

डा. सूर्यभानसिंह द्वारा लिखित मानस शब्दकोश तथा अन्य मानस कोशों को देखने के बाद भी यही नतीजा निकलता है कि 'श' ध्वनि संस्कृत की ध्वनि है अवधी की नहीं ।

रामचरितमानस की तुलसीदास द्वारा लिखित कोई प्रति उपलब्ध नहीं है । जो भी प्रतियाँ मिलती हैं वे उनके जीवनकाल के बाद की तैयारी की गई लगती हैं । ऐसा लगता है कि रामचरित मानस की लोकप्रियता को देखकर तथा गोस्वामी तुलसीदास के संस्कृत ज्ञान को ध्यान में रखकर लिपिकारों ने मानस में 'स', 'छ' के स्थान पर 'श' अक्षर लिख दिया । इस प्रकार रामचरित मानस के शब्दों की वर्तनी में भारी परिवर्तन हो गया । इसी वजह से मानस के कई प्रसंग विवादास्पद हो गए हैं ।

प्रतिलिपकारों को मानस में जो शब्द संस्कृत भाषा के हिसाब से अशुद्ध लगे, उन्हें शुद्ध करने के लिए उन्होंने अवधी के शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों को रख दिया, इस तरह लोक भाषा में रामचरितमानस में संस्कृत शब्दों की भरमार हो गई ।

बाँदा जिला के राजापुर में जो अब चित्रकूट जिले में आ गया है और जिसे तुलसीदास का जन्म स्थान माना जाता है, अयोध्या कांड की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है ।

ऐसी मान्यता है कि यह गोस्वामी तुलसीदास के हाथ लिखी हुई प्रति है । जो भी हो यह एक प्राचीन प्रति है । इस प्रति में प्रयोग की गई लिपि का विवरण बड़ा दिलचस्प है । तुलसी जन्म भूमि शोध समीक्षा के लेखक राम गणेश पांडेय ने अपनी पुस्तक पृष्ठ ९१ तथा 'रामचरितमानस में महाकाव्य, भक्ति और दर्शन के लेखक डा. विद्गवम्बर दयाल अवस्थी ने अपनी पुस्तक में मानस में प्रयुक्त लिपियों का सचित्र वर्णन किया है । डॉ. बाबूराम सक्सेना ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि अवधी भाषा कैथी लिपि में भी लिखी जाती थी । व्यापारी लोग मुडिया लिपि का प्रयोग करते थे । पढ़े-लिखे लोग अवधी को देवनागरी और फारसी लिपि में लिखते थे । इस तरह इतने प्रकार की लिपियों में लिखी जाने वाली अवधी में अगर बाद में तुलसीदास की महानता और विद्वता को देखते हुए उनमें संस्कृत शब्दों की भरमार कर दी गई तो कोई आश्चर्य नहीं ।

४.४ रामचरितमानस में समन्वयवाद

समन्वय शब्द सामान्यतः दो अर्थों में व्यवहृत होता है । अपने विस्तृत और व्यापक अर्थ में वह संयोग अथवा पारस्परिक संबंध के निर्वाह का धोतक है । इसी अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ब्राह्मण-शूद्र, राजा-प्रजा, शब्द-अर्थ, भाषा-भाव आदि के समन्वय की बात कही जाती है । उसका संकुंचित और विशिष्ट अर्थ है : परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली बातों के आभासित विरोध का परिहार करके सामंजस्य स्थापन । जब हम सांख्य और वेदांत अथवा निर्गुण और सगुण के समन्वय की बात करते हैं तब हमारा अभिप्राय होता है इन दोनों विचारधाराओं में सामंजस्य की स्थापना । इन दोनों ही दृष्टियों में तुलसीदास समन्वयवादी हैं ।

हिन्दू विचारक कहता है 'उदारचरितानाम् वसुधैव कुटुम्बकम्' । श्रेष्ठता मनोग्रन्थि या हीनता मनोग्रन्थि निम्न स्तर के लोगों में पायी जाती है । हिन्दू विचारधारा का जो जितना

ही अधिक ज्ञाता होगा, वह उतना ही अधिक उदार होगा और उसे यह सम्पूर्ण विश्व ही कुटुम्ब के समान दिखायी देगा । वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता के प्रचार के लिए पाखण्डी और स्वार्थी तत्त्व उत्तरदायी हैं । अपनी अज्ञानता और कुकृत्य को छिपाने के लिए जन्म के आधार पर ऊँच नीच का भेद फैलाया गया है । वर्ण व्यवस्था झूठ पर आधारित व्यवस्था है जो पाखण्डियों द्वारा निर्मित, पाखण्डियों द्वारा पोषित और पाखण्ड के विस्तार के लिए है । हिन्दू धर्म अपने चरम पर प्रत्येक व्यक्ति में परमात्मा को ही देखता है । धर्म की दृष्टि में न तो कोई अगड़ा है, न पिछड़ा, न दलित ।

धर्म न्याय का साथ देता है जिसमें सामाजिक न्याय शामिल है, निर्बल और असहाय को सहारा देने की बात करता है, दीन दुखी के आँसू पोछने की बात करता है, श्रमिक को उसका पूर्ण पारिश्रमिक देने की बात करता है, उत्पीड़न और अत्याचार का विरोध करने की प्रेरणा देता है ।

हिन्दुत्व हिन्दुओं को किसी एक प्रकार के रीतिरिवाज से नहीं बाँधता । किसी एक दर्शन को मानने के लिए बाध्य नहीं करता, किसी एक मत को अंगीकार करने के लिए विवश नहीं करता । यह ईश्वर में आस्था रखने या न रखने की छूट देता है । यह ऐसा उद्यान है जहाँ अधिक फल फूल प्राप्त करने के लिए पेड़ पौधों की कटाई छँटाई की जा सकती है । नये पेड़ पौधे लगाये जा सकते हैं । यह समन्वयकारी व्यवस्था है जो सबको अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता देती है फिर भी आत्मानुशासन के बल पर पल्लवित और प्रस्फुटित हो रही है । यदि किसी को इस व्यवस्था में जड़त्व दिखता है तो सकारात्मक सुझाव देना चाहिए । लोगों को शराब, जुआ आदि से दूर रहने तथा सदाचरण के लिए प्रेरित करना चाहिए । ढोंगी साधुओं और पाखण्डी धर्म गुरुओं से हिन्दू धर्म का उत्थान नहीं हो सकता ।

समन्वय भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है, समय समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ । परन्तु वे घुल मिलकर एक हो गई । समन्वय को आधार बनाने वाले लोकनायक तुलसी ने अपने समय की जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और 'रामचरितमानस' के रूप में समन्वय का अद्‌भुत आदर्श प्रस्तुत किया । तुलसी सही अर्थों में सच्चे सूक्ष्मद्रष्टा थे और उन्होंने बाल्यकाल से ही जीवन की विषम स्थितियों को देखा और भोगा था इसलिये वह व्यक्तिगत स्तर पर वैषम्य की पीड़ा से

भली भाँति परिचित थे । उनकी अन्तर्भेदी दृष्टि समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, सम्प्रदाय और यहाँ तक कि साहित्य में व्याप्त वैषम्य, असामनता, अलगाव, विछिन्नता, द्वेष और स्वार्थपरता की जड़ो को गहराई से नाप चुकी थी और उनके भीतर छिपी एक सर्जक की संवेदनशीलता यह भाँप चुकी थी कि वैषम्य और विछिन्नता के उस युग में लोकमंगल केवल सामंजस्य और समन्वय के लेप से ही संभव था । समन्वय से ही उन गहरी खाइयो को पाटा जा सकता था जो मनुष्य को मनुष्य से अलग, तुच्छ और अस्पृश्य बना रही थी । समन्वय से ही राजनीति को समदर्शी और शासन को लोक कल्याणकारी बनाया जा सकता था । फलत: तुलसी राम भक्ति की नौका के सहारे समन्वय का संदेश देने निकल पड़े । लेकिन उनके संबंध में यह ध्यान रहे कि वह समन्वय के कवि है, समझौते के नहीं । डा. दुर्गाप्रसाद' भी यही मानते है, "तुलसी ने एक हद तक समन्वय का मार्ग अपनाया है, लेकिन 'समन्वय'का ही 'समझौते' का नहीं । उन्हें जहाँ कहीं और जिस किसी भी रूप में लोक(जीवन का अमंगल करने वाली प्रवृति दिखाई दी है, उसका उन्होंने डटकर विरोध भी किया है, वहाँ वह थोड़ा भी नही चूके है ।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' भी तुलसी को लोकनायक की संज्ञा देते है(इसी समनवय की विशेषता के कारण इसलिये वह तुलसी के काव्य में समन्वय की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहते है–"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएं, जातियाँ, आचार, निष्ठा और विचार पध्दतियाँ प्रचलित है । तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है । लोक और शास्त्र का समन्वय, और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय है । रामचरितमानस शुरू से अंत तक समन्वय काव्य है ।" १

भारतीय विचारकों की सारग्रहिणी प्रतिभा ने दूसरों की ग्राह्य मान्यताओं को निस्संकोच भाव से ग्रहण किया । समन्वय भावना का ही परिणाम है कि नास्तिक बौद्धों ने राम को बोधिसत्व मान लिया, और आस्तिक वैष्णवों ने बुद्ध की अवतार रूप में प्रतिष्ठा की । सांख्य योग एवं न्याय वैशेषिक में वेदांत के ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गयी, और वेदांत में सांख्य की सृष्टि-प्रक्रिया, योग की ज्ञान-साधना तथा न्याय की तर्कप्रणाली को गौरव दिया गया । अर्थ काम और धर्म मोक्ष में, वेदशास्त्र और लोक परंपरा में, प्रवृत्ति और निवृत्ति

में, साहित्य और जीवन में समन्वय स्थापित करने के विराट प्रयत्न किए गए अनेकता में एकता की स्थापना की गयी, वैषम्य में साम्य का दर्शन किया गया ।

समन्वय के देश में महान लोकनायक वहीं हो सकता है जिसमें विशाल समन्वय बुद्धि हो और जा उस बुद्धि का सदुपयोग कर सकें । धर्म दर्शन और समाज सुधार के क्षेत्र में गौतम बुद्ध इसी प्रकार के लोकनायक थे । उनके द्वारा प्रतिष्ठित मध्यमा-प्रतिपदा त्याग और भोग के समन्वय का ही मार्ग है । वांग्मय के क्षेत्र में समन्वय साधना के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण विधमान हैं । उनमें भागवतपुराण और महाभारत का स्थान अत्यंत है । उनमें विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय है, रोचक कथाओं के माध्यम से तत्वज्ञान का उपस्थापन है, किन्तु कांतासम्मत उपदेश का विधान करने वाले लालित्यपूर्ण काव्य की सरसता नहीं है । वे संस्कृत में लिखे गए थे, अतः तुलसीयुगीन लोकमानस का नेतृत्व करने में असमर्थ थे । लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और रामचरितमानस के रूप में वह आदर्श प्रस्तुत किया जिसमें कवित्व और भक्ति-दर्शन का अदभुत समन्वय है जो अपढ़ देहातियों और शास्त्रज्ञ पंडितों के समाज में समान रूप से समादृत है ।

समन्वय सिद्धांत का व्यवस्थित निरूपण और कार्यान्वयन मंदारी का वृक्ष नहीं है । वह प्रत्यक्ष अनुभव सूक्ष्म अवेक्षण और गहन अनुशीलन का सम्मिलित परिणाम है । जीवन स्वयं समझौता है । तुलसी ने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में रहकर उसका साक्षात अनुभव किया था । वे ब्राह्मण पुत्र थे । द्वार द्वार भीख भी माँगी थी, और मठाधीश का सुखभोग भी किया था । लोगों ने दगाबाज कहकर गालियां भी थीं, और महामुनि मानकर भूपतियों तक ने पाँव भी पूजे थे । वे यौवन की कामासक्ति के शिकार भी हुए थे, और वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुँचकर आत्माराम भी हो गए थे । वे अर्थकाम-पंकिल भव-सरिता से निकल कर धर्म-दर्शन, विशिष्ठ रामभक्ति की राजडगर पर आए थे । उनमें कवि की कारयित्री प्रतिभा, भक्त केनिष्काम हृदय और समाज सुधारक की लोकमंगल भावना का अपूर्व समन्वय था । उन्होंने अपने अनुभव, अवेक्षण, शास्त्र ज्ञान और सहृदयता के आधार पर कवित्व धर्म और भक्ति की त्रिपथगा का निर्माण किया । उनकी समन्वय साधना बहुमुखी है ।

१. लोक बिलोकि पुरान वेद सुनि समुझि बूझि गुरु ज्ञानी ।

प्रीत प्रतीति पराम पद पंकज सकल सुमंगल खानी (विनयपत्रिका, १९४.४)

द्वैत-अद्वैत : तुलसी का दार्शनिक समन्वयवाद अत्यन्त विवाद का विषय रहा है। तुलसी के युग में वेदांत का प्रभुत्व था । उसके भीतर भी दो प्रकार के संघर्ष थे । १. सभी वैष्णव आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्मवाद और मायावाद के विरोधी थे । २. सभी अद्वैतवादी मध्व के द्वैतवाद के विरोधी थे । तुलसी शंकर के ब्रह्मवाद और रामानुज के विशिष्टा द्वैतवाद से मुख्यतया प्रभावित थे । परन्तु अन्य मातें से भी उन्होंने विचार ग्रहण किए हैं । यह बात ध्यान देने योगय है कि उपनिषदों और वेदांत संप्रदायों में जो मान्यताएं समान रूप से पायी जाती हैं वे तुलसी को स्वीकार्य थीं, जैसे ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप है, वह जगत कारण है, आदि । परन्तु जहाँ अद्वैतवादियों और वैष्णव वेदांतियों में मतभेद है वहां उन्होंनें समन्वयवादी दृष्टि से काम लिया है। द्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म स्वरूपतः निर्गुण, निर्विशेष और निर्लक्षण है, अर्थात उसमें वृंपा आदि विशेषताएँ नहीं हैं, माया अविधा है, उसके अस्तित्व के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, माया की उपाधी से युक्त सगुण ब्रह्म (ईश्वर) ही अवतार लेता है, एकमात्र (निर्गुण) ब्रह्म ही सत्य है, जीव, जगत और 'ईश्वर सब मिथ्या हैं, केवल ज्ञान ही मुक्ति का समाधन है। आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना (जीव के जीवत्व का नाश) ही मुक्ति है। वैष्णव आचार्यो के अनुसार ब्रह्म स्वरूपतः सगुण अर्थात कृपा आदि दिव्य गुणों से युक्त है, वही कृष्ण आदि के रूप में अवतार लेता है, उसी की शक्ति माया है, जीव उसी का अंश है, भिन्न प्रतीत होने वाला जगत तत्त्वतः उससे अभिन्न है, भक्ति मुक्ति का अमोध साधन है, सालोक्य आदि मुक्तियाँ श्रेष्ठ हैं ।

निर्गुण और सगुण : निर्गुण और सगुण का विवाद दो क्षेत्रों में था, दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में, और भक्ति के क्षेत्र में । शंकराचार्य के निर्गुण ब्रह्मवाद के विरुद्ध रामानुज और वल्लभ ने बहुत बल देकर ब्रह्म को स्वभावतः सगुण बतलाया था । दोनों का समन्वय करते हुए तुलसी ने राम को बारंबार निर्गुण सगुण स्वरूप कहा है।

१. सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ।

२. अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ।

३. जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनुप भूप सिरोमने ।

वस्तुतः राम एक हैं । वे ही निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त, अन्तर्यामी और बहिर्यामी, गुणातीत और गुणाश्रय हैं ।छ निर्गुण राम ही भक्तों के प्रेमवश सगुण रूप में प्रकट होते हैं । दोनों में कोई तात्तिवक विरोध नहीं है । यह विश्वास की बात हे । अपनी प्रीति प्रतीति के अनुसार भक्त उन्हें किसी भी रूप् में भज सकता है । तुलसी और उनकेकाव्य में अंकित भक्त सगुण रूप केउपासक हैं : क्योंकि सगुण राम की भुजाएँ ही भक्तों पर छाया करती आयी हैं, कर रही हैं और करती रहेंगी । इसका मनोवैज्ञानिक कारण है । भक्त अपने चारों ओर उस भगवान को देखना चाहता है, जो संकट केसमय काम आ सवें । इसीलिए भक्तों की दृषिट में स्वरूपतः अभिन्न होते हुए भी अन्तर्यामी की अपेक्षा बहिर्यामी श्रेष्ठ है । अस्तु तुलसी के सगुण साकार राम में रूप और गुण का, शील शकित और सौन्दर्य का, अनुपम समन्वय है ।

तुलसीदास एक ऐसे मनीषी, चिंतक, भक्त और जन कवि है, जिन्होंने अपने राम की पूंजी के बल पर तत्कालीन परिवेशगत समस्याओं का निराकरण किया । जैसे तुलसीयुगीन समाज में जाति(पाँति और अस्पृश्यता का बोलबाला था । उच्च वर्ण के व्यक्ति निम्न(वर्ण के व्यक्तियों को हेय दृष्टि से देखते थे । शूद्र वर्ण के लोग सभी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक यहाँ तक कि शैक्षिक अधिकारों से भी वंचित थे । ऐसे में तुलसी राम और उनकी भक्ति के द्वारा उन तमाम सामाजिक विषमताओ को दूर कर सबके लिये एक ऐसा मंच निर्मित करते है जहाँ अपने(पराए का भेदभाव ही मिट जाता है, जैसे उन्होंने रामचरितमानस में ब्राह्मण कुलोत्पन्न गुरु वशिष्ठ को शूद्रकुल में उत्पन्न निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर ब्राह्मण एवं शुद्र के मध्य समन्वय का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार राम और निषादराज तथा भरत और निषादराज की भेंट भी समन्वय का उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत करती है(

“करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।

मनहुँ लखन सब भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ ॥”२

समन्वय की विचारधारा को सशक्त बनाने के लिए तुलसी ने अपने युग, परिस्थितियों का गंभीर अध्ययन और विवेचन किया होगा,तभी तो जो धर्म के नाम पर अनेक सम्प्रदायों में आडम्बर, अनाचार, जटिलता, पुरोहितवाद जैसी कुरीतियाँ पनप रही थी वहाँ भी तुलसी ने

इस विषमता को समाप्त करने के लिये समन्वय का मार्ग अपनाया । उन्होंने शिव के मुख से 'सोइ सैम इष्टदेव रघुनीरा सेवत जाति सदा मुनिधीरा ' कहलवाकर शिव को राम का उपासक घोषित किया तो राम के मुख से–

"संकर प्रिय मन द्रोही सिव द्रोही मम दास ।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास ॥"३

कहलवाकर राम को शिव का अनन्य भक्त घोषित किया । यहाँ तक कि तुलसी ने सेतू(निर्माण के समय भी राम से शिव की आराधना करवाकर समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया । उन्होंने ' हरि हर पद रति मति न कुतरकी ' कहकर शिव और विष्णु में एकत्व की स्थापना की ।

शैव ओर वैष्णव सम्प्रदायों के समान उस युग मे वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों में भी पारस्परिक वैमनस्य पनप चुका था । वैष्णव विष्णु के उपासक थे और शाक्त शक्ति के तथा ये दोनों भी निरन्तर संघर्षरत रहते थे । तुलसी ने इस संघर्ष को समाप्त करने के लिए तथा उक्त दोनों सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये सीता को शक्तिस्वररूपा बताया और उन्हें ब्रह्म की शक्ति कहते हुए 'उद्भावस्थिति संहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी ' कहकर शक्ति की उपासना की ।

तुलसी की धार्मिक समन्वय की दृष्टि हमें सगुण और निर्गुण भक्ति धाराओ के समन्वय में भी देखने को मिलती है । तुलसी के अवतरण से पहले ही भक्तिमार्ग सगुण और निर्गुण भक्तिधाराओ में विभक्त हो चुका था तथा इनके समर्थको के बीच निरंतर आपसी संघर्ष चलता रहता था । इस द्वेष से प्रभावित होकर सूरदास ने 'भ्रमरगीत' में निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन किया था । तुलसीदास इन विषमताओ को समाप्त करने के लिए संकल्पित थे, इसलिये उन्होंने सगुण ओर निर्गुण भक्तिधाराओ के बीच भी समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया । उन्होंने अपने आराध्य श्रीराम को सगुण और निर्गुण दोनो रूपो में देखा तथा उपासना की ।

इस प्रकार राजा का प्रजा के प्रति जो दृष्टिकोण था, उसे तुलसी ने परिवर्तित काट दिया । उन्होंने दोनों के कर्तव्यों का निर्धारण करके समन्वय स्थापित किया । इसी प्रकार उन्होंने

श्रीराम के परिवार के माध्यम से पारिवारिक समन्वय का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है । उन्होंने पिता और पुत्र, पति और पत्नी, सास और पुत्रवधु, भाई(भाई, स्वामी ओर सेवक तथा पत्नी और सपत्नी के मध्य समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है । तुलसी के राम जितने पितृभक्त थे, उतने ही मातृभक्त भी थे तथा माता(पिता भी राम के प्रति वैसी ही भक्ति रखते थे । इसी प्रकार वधुएँ जितना सम्मान अपनी सासो का करती थी, उतना ही स्नेह उन्हें प्रतिदानस्वरूप प्राप्त भी होता था ।

तुलसीदास जी ने अपने युग की राजनीतिक विश्रृंखलता को गहराई से अनुभव किया था । उन्होंने महसूस किया कि राजा संकीर्ण विचारधारा से युक्त और आत्मकेंद्रित होते जा रहे है । प्रजा के कल्याण की ओर उनका तनिक भी ध्यान नही है । राजा और प्रजा के बीच गहरी खाई बनती जा रही है जबकि राजा और प्रजा से कही अधिक श्रेष्ठ, उन्नत और महान समझा जाता था वह ईश्वर का प्रतिनिधि भी था । ऐसे में तुलसी ने बड़ी ही निपुणता के साथ उन अशिक्षित, अयोग्य राजाओ की आलोचना करते हुए लिखा है–

“गोंड़ गँवार नृपाल कलि, यवन महा महिपाल ।

साम न दाम न भेद, कलि, केवल दंड कराल ॥”

तुलसी ने यहाँ तक कहा कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी होती है वह राजा निश्चित रूप से नरक का अधिकारी होता है ।

“ जासु राज प्रिय राजा दुखारी ।

सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥”

दार्शनिक मत मतान्तरों के मध्य व्याप्त द्वेष को समाप्त करने के लिए तुलसी ने इनके मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया । उन्हीने द्वैत(अद्वैत, विद्या अविद्या, माया और प्रकृति, जगतसत्य और असत्य, जीव का भेद अभेद, भाग्य एवं पुरुषार्थ तथा जीवनमुक्ति एवं विदेहमुक्ति जैसी दार्शनिक विचारधाराओ के बीच समन्वय स्थापित किया । अतः उस समय धर्म की आड़ में ही सामाजिक शोषण और सामाजिक सुधार होता था । तुलसी के दार्शनिक समन्वय को स्पष्ट करते हुए शिवदान सिंह चौहान कहते है ।

"तुलसीदास के दार्शनिक समन्वय को देखते हुए यह नही भूल जाना चाहिये कि तुलसी लोकमर्यादा, वर्ण व्यवस्था, सदाचार व्यवस्था और श्रुति सम्मत होने का ध्यान सदा रखते है । चाहे वह राम की भक्ति का प्रतिपादन करे , चाहे अद्वैतवाद का, चाहे माया का निरूपण करे या जीवन का विवेचन, चाहे शिव की वंदना करे या राम की, किन्तु वह अपनी इन बातों को किसी न किसी रूप में याद रखते है इसलिए तुलसी के समकालीन परिवेश में मुक्ति(प्राप्ति के दो मार्ग प्रचलित थे – ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग । ज्ञानमार्ग के समर्थक ज्ञान को मुक्ति प्राप्त करने का उत्कृष्ट साधन मानते थे और भक्तिमार्ग के समर्थक इस दृष्टि से भक्ति को अधिक महत्व प्रदान करते थे । दोनो में अपने अपने मत की उत्कृष्टता को लेकर पर्याप्त विवाद चलता रहता था । तुलसी ने अपने साहित्य के माध्यम से इस विवाद को समाप्त करने का सफल प्रयास किया है । उन्होंने अपने काव्य में जहाँ एक और ज्ञान को सृष्टि का सर्वाधिक दुर्लभ तत्व घोषित किया– 'हरि को भजे सो हरि को होई' और 'सियाराममय सब जग जानी' की समता पर आधारित भक्ति का वर्णन करते हुए भी शूद्र और ब्राह्मण के भेद को स्वीकार करते है ।"४

वही दूसरी ओर उन्होंने भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नही है, क्योंकि ये दोनों ही सांसारिक क्लेशो का नाश करने वाले है, कहकर भक्ति और ज्ञान में अभेद स्थापित किया–

"कहहि सन्त मुनि बेद पुराना ।

नहि कुछ दुर्लभ ग्यान समाना ॥"५

"भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा ।

उभय हरहि भव संभव खेदा ॥"६

कहकर ज्ञान की श्रेष्ठता का भी प्रतिपादन किया है क्योंकि ज्ञान से ही चित्त रूपी दीपक प्रज्जवलित होता है । इस प्रकार तुलसी ने भक्ति ज्ञान के मध्य अद्‌भुत समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है । यद्यपि तुलसी ने 'ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका' तथा 'ग्यान का पंथ कृपान की धारा' कहकर जनमानस को ज्ञान(मार्ग की कठिनाइयों से भी अवगत कराने का प्रयास किया तथा 'भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानी' कहकर भक्ति को ज्ञान की उपेक्षा अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया । परंतु एक अन्य स्थान पर 'रामचरितमानस' में–

“जोग अगिनि करि प्रकट तब कर्म सुभासुभ लाइ,

बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥”७

तुलसीदास की समन्वयकारिणी प्रतिभा से साहित्य भी अछूता नही रहा । उन्होंने अपनी साहित्य साधना किसी एक प्रचलित शैली में नही की, बल्कि उस समय प्रचलित सभी काव्य शैलियों को अपनाकर साहित्यिक समन्वय का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया । उन्होंने प्रबन्ध, मुक्तक और गीति आदि सभी काव्य शैलियों को अपनाया । उनका 'रामचरितमानस' यदि श्रेष्ठ महाकाव्य है तो 'विनयपत्रिका' एक श्रेष्ठ मुक्तक रचना है । उन्होंने अपने समय में प्रचलित ब्रज, अवधी ओर संस्कृत भाषाओ का समन्वय अपने काव्य में इतनी सुंदर शैली में किया है कि वह न तो उनकी कृतियों के प्रवाह में बाधक बना और न भाषिक श्रृंगार का घातक ही । अवधी में 'रामचरितमानस' उनकी साहित्यिक प्रतिभा की पराकाष्ठा है तो ब्रज में 'गीतावली' ,'दोहावली' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ है । रामचरितमानस में उन्होंने इतने रचनात्मक कौशल के साथ संस्कृत और अवधी भाषाओ में सामंजस्य स्थापित किया है कि देखते ही बनता है(

“जय राम रमा रामरमनं समनं ।

भवताप भयाकुल पाहि जनं ॥

सरनागत मागत पाहि प्रभो ॥

अवधेस सुरेस रमेस विभो ।”८

उनके काव्य में जहाँ एक ओर भाषा का साहित्यिक सौंदर्य दृष्टिगत होता है, वही दूसरी ओर जनभाषा का भी अत्यंत सरस रूप दिखाई देता है । तुलसु पूर्णतया समन्वयवादी थे इसलिये उन्होंने अपने समय की तथा पूर्व प्रचलित सभज काव्य पद्धतियों को राममय करने का सफल प्रयास किया । सूफियों की दोहा(चौपाई पद्धति, चन्द के छप्पय और तोमर आदि, कबीर के दोहे और पद, रहीम के बरवै, गंग आदि की कवित्त(सवैया पद्धति एवं मंगल काव्यों की पद्धति को ही नही, वरन् जनता में प्रचलित सोहर, नरछू, गीत आदि तक को उन्होंने रामकाव्यमय कर दिया । इस प्रकार उन्होंने काव्य की प्रबंध एवं मुक्तक दोनो

शैलियों को अपनाया । उन्होंने तत्कालीन कृष्णकाव्य की ब्रजभाषा और प्रेमकाव्यो की अवधी भाषा दोनो का प्रयोग करके समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है ।

निष्कर्षत: तुलसी ने तत्कालीन संस्कृतियों, जातियों, धर्मावलंबियों के बीच समन्वय स्थापित करके दिशाहीन समाज को नई दिशा प्रदान की । समन्वय का यह भाव उनकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में भी झलकता है कवि की भाषा की सहजता, सरलता और उत्कट सम्प्रेषणीयता मानवमूल्यों को जोड़ती है । तुलसी के काव्य में संस्कृत, अवधी, ब्रजभाषा आदि भाषाओ का सुंदर सामंजस्य मिलता है । लोक ब्रह्म तुलसी ने भारतीय जनता की नस(नस को पहचान कर ही 'रामचरितमानस' के द्वारा समन्वयवाद का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया । वैसे तो हमारी भारतीय संस्कृति में सब्र और समन्वय का भाव पहले भी था और आज भी है किन्तु आज भोग की प्रवृति प्रधान हो रही है । सामाजिक व्यवस्था के तार भी छिन्न भिन्न हो रहे है । विश्वस्तर पर आतंकवाद चुनौती बन चुका है । इस प्रकार की विषम परिस्थिति में तुलसी की लोकपरक दृष्टि एवं समन्वयवादी विचारधारा ही मानवजाति को मानसिक एवं आत्मिक शन्ति प्रदान कर सकती है ।

पंचम : अध्याय

५.१ उपसंहार

तुलसीदास हिन्दी साहित्य की रामभक्ति परंपरा के सशक्त आधार स्तंभ हैं । तुलसी से पहले और बाद में भी हिन्दी साहित्य में रामभकित काव्य की परंपरा मिलती है, किंतु रामभक्ति को जन जन में प्रसारित करने और राम के नाम को भक्ति क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान दिलाने में तुलसीदास का महत्तम योगदान है । सामाजिक दृष्टि से उनका महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि उन्होंने न केवल रामभक्ति को अपनी कविता का उद्देश्य बनाया अपितु समसामयिक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अनुरूप राम के आदर्श चरित्र का जो रूप प्रस्तुत किया, उससे उन्हें व्यापक लोक मान्यता प्राप्त हुई ।

तुलसी के युग में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक मूल्य अपना महत्त्व खो चुके थे । समाज उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की दो गहरी खाइयों में बंटा हुआ था । उच्च सामंतवर्ग जहाँ एक ओर वैभव विलासपूर्ण जीवन में लिप्त था, तो गरीब वर्ग जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं से भी वंचित था । तुलसी के काव्य में उपलब्ध 'खेती न किसान को, बनिक को बनिज न, भिखारी को न भीख भलि, चाकर को चाकरी जैसी पंक्तियाँ उनके युग के समाज की दयनीय दशा की ओर संकेत करती हैं । धन के मद में डूबे शासक वर्ग को शोषित एवं संत्रास्त जन समाज की कोई चिंता नहीं थी । अत्याचारी शासकों के शासन में जनता स्वयं को असुरक्षित अनुभव कर रही थी ।

सामाजिक क्षेत्र में वर्ण व्यवस्था का बोलबाला था । ऊँच नीच का भेदभाव समाज को खोखला बना रहा था । पारिवारिक जीवन विश्रृखलित हो रहा था और स्त्री पूर्णतः पुरुष पर आश्रित थी, जिसकी स्वयं की कोई आवाज़ और अधिकार नहीं थे । विजेता मुगल शासकों के आगमन के कारण धार्मिक क्षेत्र में भी दोनों धर्मो और संस्कृतियों में सीधी टक्कर हुई । काफिरों को मारना, मंदिर और मूर्तियों का विध्वंस करके दूसरे धर्म की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाना और अपने धर्म का अंधाधुंध प्रचार इस विदेशी संस्कृति का मूल उद्देश्य था ।

अपने युगीन समाज की चहुँमुखी दुर्दशा को देखकर तुलसी का विक्षुब्ध मन इन सभी विसंस्कृतियों को दूर करने के लिए व्याकुल हो उठा । उन्होंने अनुभव किया कि राम के आदर्श स्वरूप को जन जन में पहुँचाए बिना समाज का उत्थान नहीं हो सकता । सगुण भक्ति, राम के रूप में सभी सामाजिक संबंधों का आदर्श और आदर्श शासक के उनके सभी स्वप्न रामचरितमानस में प्रतिफलित हुए ।

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक ।

पालहि पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक ।

जैसे तुलसी के आदर्श राज्यत्व संबंधी विचार तत्कालीन युग के संदर्भ में ही नहीं अपितु प्रत्येक युग के संदर्भ में ग्राह्य हैं ।

तुलसीदास के संपूर्ण काव्य का मूल विषय रामकथा है । उन्होंने ऐतिहासिक पौराणिक रामकथा को अपनी भक्ति भावना से पुष्ट करके अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है । वैसे तो तुलसी के नाम से अनेक पुस्तकें प्राप्त होती हैं, जिनकी संख्या ३६ तक गिनाई जाती है किंतु अब तक की खोजों के आधार पर तुलसी की रचनाओं की सर्वमान्य संख्या १३ है । इनमें भी रचनाओं के कालक्रम पर मतभेद हैं कि कौन सी रचना पहले की है और कौन सी बाद की । कवि की सर्वसम्मत रचनाएँ इस प्रकार हैं, रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, श्रीकृष्णगीतावली, जानकीमंगल, पार्वती मंगल, रामललानहछू, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न और हनुमान बाहुक ।

तुलसीदास की लोकप्रियता का प्रमुख आधार स्तंभ 'रामचरितमानस है । एक विदेशी विद्वान डा. ग्रियर्सन के अनुसार यह हिन्दुओं का बाइबिल है । यह काव्य कवि के व्यकितगत और विचारधारा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है । यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें निरुपित शाश्वत जीवन मूल्य और उदात्त आदर्श इसे विश्व वांग्मय का महत्त्वपूर्ण अंश बना देते हैं । इसमें तुलसीदास ने किसी एक सीमित वर्ग के जीवन का चित्राांकन नहीं किया अपितु जनजीवन की आशा आकांक्षाएँ भी इसमें प्रतिफलित हुई हैं । इसमें तुलसी ने विष्णु के अवतार राम के जीवन की समस्त घटनाओं को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि उनके माध्यम से जीवन के प्रत्येक पक्ष का आदर्शमय रूप पाठक को गहराई तक प्रभावित

करता है । उन्होंने राम के रूप में आदर्श और मर्यादा का जो प्रतिमान स्थापित किया है, वहीं रामचरितमानस को समाज के प्रत्येक वर्ग में समादर दिलाने में समर्थ हुआ है ।

भक्ति और दर्शन की दृष्टि से भी रामचरितमानस एक उत्कृष्ट ग्रंथ है । तुलसी ने अपने युग में प्रचलित सभी भक्ति मार्गों और दार्शनिक संप्रदायों के गुणों का ग्रहण और अवगुणों का परिहार करके एक समन्वयवादी विचारधारा को अपनाया, जिसने निर्गुण और सगुण ब्रह्म को एकाकार कर दिया–

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।

एक दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जग ब्रह्म बिबेकू ॥

काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भी रामचरितमानस उत्कृष्ट कोटि का काव्य है । उसकी रचना का उद्देश्य अथवा काव्यादर्श स्वयं कवि के शब्दों में इस प्रकार है–

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहुँ हित होई

अपनी रचनाओं में लोकहित की मान्यता को स्वीकृति देते हुए भी काव्य का सौंदर्य पक्ष मानस में उपेक्षित नहीं रहा । इस प्रबंध काव्य की वक्ता,श्रोता शैली इसे विशिष्टता प्रदान करती है । इस काव्य में वर्णित मार्मिक स्थल, भावों और रसों की सुंदर व्यंजना, अलंकारों और छंदों का सहज प्रयोग, सहज(सरल भाषा इसे उत्तम काव्य की कोटि में स्थित करते हैं ।

विनयपत्रिका मूलत: तुलसी का आत्मनिवेदनपरक ग्रंथ है । इसे कवि की अंतिम रचना कहा जाता है, जिसमें समय समय पर लिखित २७९ पद संकलित हैं । तुलसी के जीवन का अंतिम समय शारीरिक रुग्णता और कष्टा का समय था । विनयपत्रिका के पदों के माध्यम से कवि ने अपने इष्ट का ध्यान इन्हीं दुखों की ओर आकृष्ट किया है, जिनके कारण उनका जीवन अत्यंत दीनतापूर्ण हो गया था । तुलसी की करुण दीनता और इष्ट से करुणा की प्रार्थना 'विनयपत्रिका में बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत है–

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥

जैसा कि इस रचना के नाम से स्पष्ट है, यह कवि के विनय की पत्रिका है, जिसे उन्होंने विभिन्न देवी (देवताओं के माध्यम से अपने आराध्य राम तक पहुँचाया है। पत्रिका के अंत में स्वयं राम तुलसी की पत्रिका को स्वीकार करते हुए उस पर सही करते हैं–

बिहँसि राम कहयो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।

मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है।

लोकप्रियता की दृष्टि से कवि की अन्य रचनाओं की तुलना में रामचरितमानस के पश्चात विनयपत्रिका का स्थान है किंतु भाषा की संस्कृतनिष्ठता और क्लिष्टता के कारण यह रचना शिक्षित वर्ग में ही अधिक लोकप्रिय हो पाई है, जन सामान्य में नहीं ।

कवितावली सात कांडों में विभक्त रचना है किंतु इसमें रामचरितमानस जैसी प्रबंधात्मकता का अभाव है। यह कवित्तों में निबद्ध रामकथा है, जिसके अलग अलग समय पर लिखे गये छंदों को कथाक्रम में पिरोया गया है। इस कृति में तुलसी ने राम की कीर्त्ति के वर्णन के साथ साथ युगीन परिवेश और परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। अपने युग के संघर्षपूर्ण जीवन, समाज में फैली महामारियों और कुव्यवस्था का अंकन कवितावली की विशिष्टता है।

गीतावली तुलसीदास की वह मुक्तक रचना है, जिसमें कवि ने रामकथा के सभी सरस प्रसंगों को सहज भाव से वर्णित किया है। एक ही प्रसंग एवं स्थिति का अनेक रूपों में वर्णन तुलसी के सशक्त कवित्व का परिचायक है। राम के बाल रूप का वर्णन हो या सीता स्वयंवर का प्रसंग अथवा वनमार्ग में जा रहे राम सीता और लक्ष्मण के सौंदर्य पर मुग्ध वनवासियों का चित्र सभी प्रसंगों में तुलसी की कविता पाठक को मोहित करती है।

विविधि राग रागनियों में रचित इस रचना का फलक इतना विस्तृत और बहुआयामी है कि इसे दूसरा रामचरितमानस कहा जा सकता है। रचनासौष्ठव, ललित कल्पना और भाव विन्यास तथा जीवन की पकड़ के कारण गीतावली निश्चय ही कवि की महान रचना है।

दोहावली तुलसीदास की मुक्तक रचना है, जिसमें ५५० दोहे और २३ सोरठे संकलित हैं । कृष्ण गीतावली कृष्ण के जीवन पर आधारित एक लघु रचना है। इसी प्रकार पार्वती

मंगल तथा जानकी मंगल भी कवि की वे लघु रचनाएँ हैं, जो भावप्रवणता और काव्य कौशल की दृष्टि से सशक्त हैं ।

तुलसी का भक्ति दर्शन

राम की भक्ति तुलसी के संपूर्ण साहित्य का आख्यान है । जैसा कि पहले संकेत किया गया, तुलसी का युग विविध धार्मिक संप्रदायों एवं आंदोलनों का युग था । सगुण भक्ति शाखा, निर्गुण भक्ति शाखा, इनमें भी कृष्ण भक्ति, रामभक्ति, संत मत एवं सूफी मत जैसे अनेक भक्ति मार्ग जन सामान्य को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे । तुलसी सगुणोपासक रामभक्त थे और उनका पूर्ण विश्वास था कि कृष्ण के लोकरंजक रूप की अपेक्षा राम का लोकरक्षक रूप तथा निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा सगुण ही जनसामान्य के अधिक निकट हो सकता है । उन्हांने राम को निर्गुण निराकार ब्रह्म के रूप में नहीं अपितु सगुण साकार सामान्य मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया जो आर्तजन की पुकार सुनकर अवतार धारण करता है–

जब जब होई धरम कै हानी । बढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।

तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

तुलसी के आराध्य राम शील, शकित और सौंदर्य के पुंजीभूत रूप हैं, जो किसी भी भक्त हृदय की भक्ति के सहज आलंबन हो सकते हैं । यधपि तुलसी ने निर्गुण और सगुण तथा ज्ञान और भक्ति दोनों मार्गों में अंतर नहीं माना फिर भी सहजग्राहता तथा सुसाध्यता की दृष्टि से ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व दिया–

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहि भव संभव खेदा ।

तुलसी का भक्तिमार्ग साधना का कठिन मार्ग नहीं, अपितु ऐसा सहज सरल मार्ग है, जिस पर चलने के लिए किन्हीं बाह्यचारों की अपेक्षा नहीं है । रामचरितमानस में राम शबरी की नवधा भक्ति का उपदेश देते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य सत्संगति करता है, ईश्वर स्मरण में प्रेम रखता है, गुरु एवं श्रेष्ठ जनों की सेवा करता है, कपट एवं स्वार्थ रहित होकर ईश्वर का गुणगान करता है, संयम नियम का पालन करता है, यथा लाभ संतोष की वृत्ति रखता है, वही मेरा सच्चा भक्त है । तुलसी द्वारा दी गई भक्ति की यह परिभाषा तथा

सच्चे भक्त के लक्षण भक्ति के किसी शास्त्रीय रूप तथा बाह्यचारों को अपनाने के लिए प्रेरित नहीं करते । यह तो वह भक्ति है जो भक्त मन को उदात्त एवं कालुष्यरहित बनाती है । यह वह मणि है जिसे प्रकाशित होने के लिए बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं है ।

भक्ति दर्शन की दृष्टि से ही नहीं, अपितु सामाजिक सापेक्षता की दृष्टि से भी तुलसी का साहित्य अमूल्य है । कोई भी साहित्यकार समाज में तभी स्थापित हो सकता है जब वह समकालीन समस्याओं को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति देता है और दिशाहीन समाज का दिशा निर्देश करता है । तुलसी ने अपने युग के विश्रृंखलित समाज और विघटित होते मूल्यों को गहराई से परखा था । इसके लिए उन्होंने किसी आंदोलन या क्रांति की बात नहीं की अपितु रामभक्ति और समन्वय मार्ग को अपनाने की बात कही । चाहे वह पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के निर्वाह की बात हो या वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रश्न, तुलसी ने यथासंभव मध्यमार्गीय संतुलन बनाये रखने की बात कही । उन्होंने राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, कौशल्या, दशरथ, विभीषण, सुग्रीव आदि चरित्राों के माध्यम से आदर्श पुत्र, पिता, भाई, पति, पत्नी, सेवक, बंधु आदि संबंधों का निर्वाह कराया । पारिवारिक संबंधों में आदर्श और मर्यादा का चित्रण तुलसी के साहित्य की ऐसी विशेषता है जो प्रत्येक युग के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है ।

इसी प्रकार भक्ति के क्षेत्र में भी शैव और वैष्णव, वैष्णव और शाक्त, अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैत, ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण का समन्वय तुलसीमत की विशेषता है । तुलसी के समय में शैवमत तथा वैष्णवमत के अनुयायियों में अपने अपने मार्ग को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ थी । इससे दोनों मतों में विद्वेष इस सीमा तक बढ़ा कि स्थिति हिंसा तक पहुँचने लगी । दोनों मतों के अनुयायियों में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से तुलसी ने रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर शिव द्वारा राम की और राम द्वारा शिव की स्तुति दिखाई है । इसी प्रकार सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।

कहकर तुलसी ने निर्गुण और सगुण भक्ति साधना के बीच जो एकात्म स्थापित किया है, उसके कारण ही उन्हें लोकनायक की संज्ञा दी गयी । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार पद्धतियाँ

प्रचलित हैं । भारतीय समाज की प्राचीन रूढ़ियों, मान्यताओं का अपने समय में राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर और तुलसी जैसे लोकनायकों ने युग की आवश्यकता के अनुसार पुनर्गठन किया और अपने नेतृत्व में समाज को नई चेतना एवं नई दृष्टि प्रदान की.... लोक और शास्त्र का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय । रामचरितमानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है ।

संदर्भ पुस्तक :

तुलसीदास रचित रामचरितमानस

रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास

हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी : साहित्य का उद्भव और विकास

तुलसी मीमांसा

रामललानहछू

वैराग्य संदीपनी

बरवै रामायण

पार्वती मंगल

जानकीमंगल

रामाज्ञाप्रश्न

दोहावली

कवितावली

गीतावली

श्रीकृष्ण गीतावली

विनयपत्रिका

विकीपीडिया

गूगल पुस्तक

संदर्भ सूची

१. डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ १०१

२. तुलसीदास : रामचरितमानस, आयोध्याकाण्ड, दोहा : १९३

३. शिवदान सिंह चौहान : दार्शनिक विचार और समन्वयवाद (आलोचनात्मक लेख) पृष्ठ : ३०/३१

४. तुलसीदास : रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दोहा :२

५. तुलसीदास : रामचरितमानस, ११४ ख

६. तुलसीदास : रामचरितमानस, ११४ ख/ठ

७. तुलसीदास : रामचरितमानस, ११७ क

८. तुलसीदास : रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, १३ ख छन्द १